Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ओ३म्

ज्ञान-प्रकाश

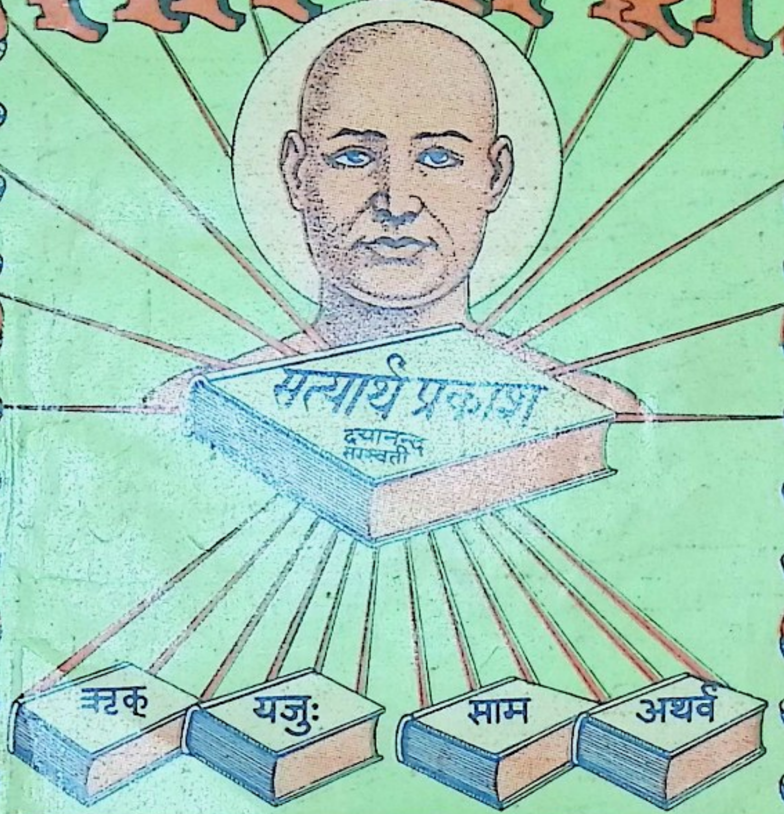

जन ज्ञान
(मासिक)

नवम्बर
१९६९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

महर्षि दयानन्द : मृत्यु से पूर्व

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

372

संपादकीय

भाइयो और बहिनो !

आज दीवाली है, आप अपने घरमें दीपक भी जलायेंगे, मिठाइयां भी बनेंगी, व्यय भी होगा, आमोद प्रमोद भी होंगे, भौतिक दृष्टि से प्रकाश और आनन्द प्राप्ति के साधन आप जुटायेंगे। आपके घर आंगन में हर्ष लहर लहराएगी...

ऐसे में यदि मैं आपसे यह कहूं कि—आप यह सब न करें, तो आप मेरी बात नहीं मानेंगे, और मैं ऐसा कहूंगी भी नहीं, पर इतना तो अवश्य कहने का मेरा अधिकार है कि कुछ ऐसा भी कीजिए कि आप का यह हर्ष और आनन्द स्थायी हो सके।

सच तो यह है कि आज राम की (जो सत्य का प्रतीक था) हार हो रही है और रावण की (जो अधर्म का प्रतिनिधि था) विजय दुन्दुभि बज रही है। धरती से धर्म नष्ट हो रहा है। हमारे आपके जीवन का 'सत्य' आज पता नहीं कहां मुंह छिपाए पड़ा है और असत्य हमारे सर्वनाश के साधन जुटाकर सर्वत्र छाया है।

'धर्म' और 'अधर्म' के युद्ध में आज धर्म हार रहा है। ऐसे में मैं यदि आपसे यह कहूं कि मेरे भाई और बहिन ! आप दीपावली मनाते हुए कुछ ऐसा भी करो कि अधर्म हारे और धर्म विजयी हो, तो क्या यह अनुचित होगा ? बहन की पुकार पर वीर आर्य मौन नहीं रह सकते, इसलिए एक बहन के नाते दीपावली पर मैं आपको, राम के अनुयायियों और दयानन्द के वीर सैनिकों को पुकारती हूं.....

धर्म की रक्षा के लिए, वेद का सन्देश फैलाने और ऋषिवर दयानन्द का अधूरा काम पूरा करने के लिए.....मेरी यह पुकार आप सुनेंगे तो मैं यह समझूंगी कि मैंने जिस संकल्प को ग्रहण कर सत्य और धर्म का संदेश फैलाने का निश्चय किया है, उसमें सफलता मिल रही है।

धर्म की विजय और अधर्म की समाप्ति का संकल्प और वेद का प्रकाश भू-मंडल पर फैलाने का भाव हमारे मन में अंकुरित हो और हम आर्य विजयी हों—इस के लिए **आप कुछ करने का निश्चय करें**—यह मेरी प्रार्थना है, सब भाइयों और बहनों से.........

—राकेश रानी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जन-ज्ञान (मासिक)
१५९७ हरध्यानसिंह रोड,
नई दिल्ली-५

भारतेन्द्रनाथ साहित्यालंकार
के संरक्षण-निर्देशन में
प्रकाशित

धरती के प्रत्येक मानव के हृदय मन्दिर पर "वेद ज्ञान" की पावन पताका फहराने के लिए कृत संकल्प आर्य जनता का अपना प्रतिनिधि प्रकाशन
फोन नं० ५६६६३९

सम्पादक—
राकेश रानी

वार्षिक मूल्य १०)
एक प्रति ८० पैसे
विदेश में १ पौंड
इस अंक का मूल्य १.५०

लेखक :

—हरिशरण "सिद्धांतालंकार"

—दीनानाथ "सिद्धांतालंकार"

संसार में वेद का संदेश फैलाने और वैदिक साहित्य प्रकाशन के लिए

१. जन-ज्ञान (मासिक) के सदस्य बनें।

वार्षिक मूल्य १०) : आजीवन १०१)

नमूना पत्र लिखकर बिना मूल्य मंगाएँ

२. वैदिक साहित्य व अंग्रेजी के ग्रन्थ प्रकाशन हेतु व ईसाइयत के प्रवाह को रोकने के लिए उदारतापूर्वक सहयोग दीजिए।

संचालक :

जन-ज्ञान [मासिक]

१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, करोल बाग, नई दिल्ली-५

वर्ष २ अंक ७

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमें यह कहना है—

'ज्ञान' और जीवन

जीवन चाहिए तो 'ज्ञान' भी चाहिए, अज्ञान तो मृत्यु ही दे सकता है। शांति, सत्य का मार्ग 'ज्ञान-प्रकाश' के बिना ज्योतित नहीं हो सकता, यह तथ्य धरती जितना शीघ्र समझ ले उतना ही उत्तम है।

महर्षि दयानन्द ने अपना सम्पूर्ण जीवन, पूर्ण सामर्थ्य के साथ 'ज्ञान' हेतु अर्पित किया, वे प्रकाश के लिए जिए और प्रकाश पर्व के दिन प्रकाश-प्रसार का आदेश देकर चले गए।

हम दयानन्द के उत्तराधिकारी उनकी भावनाओं को मूर्त रूप देने हेतु कृत संकल्प हैं। आर्य समाज का प्रत्येक सैनिक ऋषि आदेश की पूर्ति के लिए प्रण-बद्ध है। वस्तुतः आर्य समाज का एक मात्र कार्य महर्षि दयानन्द के अधूरे काम को पूरा करना ही है।

दीपावली का दिन हमारे महान् गुरुदेव के जीवन की विदा का दिन था। हमें इस दिन स्मृति आती है, उन क्षणों की, जब वे अपनी इह लोक-लीला पूर्ण कर रहे थे। क्या भाव थे, क्या स्थिति थी, यह सब साकार आज हमारे समक्ष उपस्थित हो रहा है।

हम चाहते हैं कि जैसे भी हो दयानन्द की इच्छा पूरी हो, यह इच्छा वस्तुतः युग क्रांति की आधार शिला है। ऋषि के मंतव्यों की पूर्ति में मनुष्य जाति का भाग्य छिपा है। जाति-मत और भौतिकता के बवंडर को ज्ञान अग्नि में जब तक स्वाहा कर पूर्णाहुति नहीं होती तब तक कार्य लक्ष्य यज्ञ अधूरा है।

आज मन में पीड़ा भी है। आँखों में आँसू भी हैं कि पता नहीं क्यों 'ज्ञान' प्रसार का दायित्व सम्भालने वाले हाथों में कम्पन आ गया है। 'वेद' प्रसार के लिए उद्दाम लालसा कहाँ सो गई? ऋषि दयानन्द की जय के लिए सजी दयानन्द की वीर सेना को तंद्रा कैसे आ गई ?

हम इस तंद्रा को तोड़ने का निश्चय कर चुके हैं। दयानंद की सेना को वीर वेश में सजा युद्ध के लिए बिगुल बजाने का कार्य आपका 'जन-ज्ञान' कर रहा है। निराशा, फूट, आलस्य और स्वार्थ की भावनाओं को धू-धू कर यज्ञाग्नि में हम स्वाहा कर देना चाह रहे हैं।

हम दीपावली उस दिन मनाएंगे जिस दिन कम से कम भारत में धर्म राज्य होगा। जब सारी धरती मिल कर दयानन्द की जय बोलेगी। जब पुराण, कुरान, बाइबल का विष मनुष्य को असुर न बना सकेगा और हम अपने को जान, जीवन के सत्य को समझ, ज्ञान प्रकाश के रहस्य को सर्व सुलभ बना, जीवन में ज्ञान ज्योति को ज्योतित कर सकेंगे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ऋषिवर दयानन्द के स्वप्नों की पावन स्मृति में दीपमाला के दिन हम, अधर्म, अज्ञान के संहार और ज्ञान-धर्म के प्रसार का अपना व्रत पुनः दोहराते हैं।

'ज्ञान प्रकाश' अर्पित है—ज्ञान-प्रसार की भावना से सत्यार्थ प्रकाश का सार यह "ज्ञान-प्रकाश" 'जन-ज्ञान' आपको भेंट कर रहा है। प्रसिद्ध आर्य विद्वान् पं०हरिशरण जी सिद्धांतालंकार ने प्रथम दस समुल्लासों का और श्रेष्ठ पत्रकार पं० दीनानाथ जी सिद्धांतालंकार ने अन्तिम चार समुल्लासों का सार अपने अनुभव और ज्ञान के आधार पर प्रस्तुत किया है। इन दो विद्वानों की यह अनमोल रचना अपने पाठकों की सेवा में सादर अर्पित है।

क्षमा-प्रार्थना—जिन आर्य समाजों के आदेश हमें बीस अक्टूबर तक प्राप्त नहीं हुए, बाद में आए हम उनसे क्षमा प्रार्थी हैं कि हम उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर सके। भविष्य में सभी कृपा कर निश्चित समय तक अपना आदेश भेजने का कष्ट करेंगे तो सभी को सुविधा रहेगी।

धन्यवाद—हमने ३१ अक्टूबर तक पांच हजार सदस्य बनाने की प्रार्थना की थी। हमें हर्ष है कि सर्वत्र इस प्रार्थना का स्वागत हुआ। जयपुर के कर्मठ आर्य श्री रामजीदास ने सौ से अधिक सदस्य बना कर जो उत्साह दिखाया है उससे हम उनके प्रति नत मस्तक हैं। विहार (मुश्कीपुर) के श्री जगलाल प्रसाद जी, ओबरा के श्री उमाशंकर, कानपुर के श्री रुद्रदत्त शुक्ल और भी न जाने कितने आर्य बन्धुओं ने उत्साह की भावना का प्रदर्शन कर 'जन-ज्ञान' को अपना स्नेह अर्पित किया। सभी का हार्दिक धन्यवाद।

बधाई—आर्य जनता को कि उसका 'जन-ज्ञान' अब आर्य समाज का सबसे अधिक लोक प्रिय पत्र हो गया। इन पंक्तियों को लिखते हुए 'जन-ज्ञान' की सदस्यता चार हजार से ऊपर पहुँच रही है। हमें हर्ष है कि अभी आर्य समाज के जन-मानस में ऋषि के प्रति प्यार और उत्साह की भावना जीवित है। यह शुभ लक्षण ही भविष्य की आधार शिला है।

आशीर्वाद—चाहिए हमें गुरुजनों का, स्नेह चाहिए दयानन्द के सैनिकों का, दुलार चाहिए माताओं का कि हम प्रभु के विश्वास के बल पर बढ़ते रहें। अपने सर्वस्व की आहुति देकर भी दयानन्द की पताका थामे चलते रहें। प्रकाश अंधेरे को मिटाए, अंधेरा पास न आए, और मेरे प्रभु, बस इतना ही आशीर्वाद हमें दो, और हमें कुछ नहीं चाहिए। **—भारतेन्द्र नाथ**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दो शब्द

भूले-भटकों का मार्गदर्शक

महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा लिखित सत्यार्थ-प्रकाश कोई साधारण ग्रन्थ नहीं अपितु धार्मिक विश्वकोष है। यह ग्रन्थ दो भागों में विभक्त है पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध। पूर्वार्द्ध में वैदिक सिद्धान्तों, मन्तव्यों और आचरणीय कर्तव्य का मण्डनात्मक सुन्दर विवेचन है। दैनिक कर्तव्य में शिक्षा से लेकर मोक्ष तक सभी कर्तव्य कर्मों का उल्लेख है। इसमें वर्णाश्रम धर्म का पूर्ण विवेचन है। राजनीति के सम्बन्ध में राजा, प्रजा, कर, दूत, मन्त्री, दण्डविधान आदि सभी विषयों के विवरण के साथ-साथ परतन्त्रता पर दुःख के आंसू बहाते हुए स्वदेशी शासन की प्रशंसा करते हुए लिखा है—**"कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।"** सृष्टि उत्पत्ति कैसे हुई, वेदज्ञान की क्या आवश्यकता है, परमात्मा निराकार होते हुए ऋषियों के हृदय में ज्ञान कैसे देता है, क्या ईश्वर है, उसके अस्तित्व में क्या प्रमाण हैं, पुनर्जन्म क्यों होता है, कैसे कर्मों से कौन सी योनि मिलती है, क्या खाना चाहिये और क्या नहीं, आचार क्या है और अनाचार क्या है, विदेश यात्रा करनी चाहिये अथवा नहीं—इस प्रकार के शतशः विषयों पर महर्षि ने युक्ति-युक्त, तर्कपूर्ण और विवेचनात्मक विचार प्रस्तुत किये हैं।

उत्तरार्द्ध में चार समुल्लास हैं। इन समुल्लासों में भारतीय और अन्य देशीय मतों का तर्कसम्मत खण्डन है। महर्षि ने उस युग में प्रचलित कबीर पन्थ, दादू पन्थ, नानक पन्थ, गोसाईं, खाकी, वाममार्गी, शैव, वैष्णव, प्रार्थना समाज, ब्राह्म समाज, जैन, बौद्ध, चारवाक, ईसाई और मुसलमानों की उन-उनके ग्रन्थ के आधार पर समालोचना करते हुए लिखा है—'अच्छा तो वेद मार्ग है, जो पकड़ा जाये तो पकड़ो नहीं तो सदा गोते खाते रहोगे।" आगे वे पुनः लिखते हैं—इसलिए जो उन्नति करना चाहो तो आर्य समाज के साथ मिल कर उसके उद्देश्यानुसार आचरण करना स्वीकार कीजिए नहीं तो कुछ हाथ न लगेगा" इस आलोचना में महर्षि का उद्देश्य किसी का हृदय दुःखाना नहीं है। अपितु सत्यार्थ का ज्ञान कराना ही उनका प्रयोजन है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्यार्थप्रकाश के स्वाध्याय से मनुष्य की बुद्धि पर पड़ा हुआ अज्ञान का पर्दा हट जाता है। उसे न केवल अपने धर्म के स्वरूप का ही बोध होता है अपितु अन्य मत, पन्थ और सम्प्रदायों का भी बोध हो जाता है। यह सत्यार्थ प्रकाश चौदह गोली का ऐसा अद्भुत पिस्तौल है कि एक ओर मनुष्य इससे आत्मरक्षा कर सकता है और दूसरी ओर आक्रमणकारी पर प्रहार कर उसे निरुत्तर भी कर सकता है। इसीलिए सावरकर जी ने कहा था—**'सत्यार्थ प्रकाश की विद्यमानता में कोई विधर्मी अपने मजहब की शेखी नहीं मार सकता,**। महात्मा हंसराज ने कहा था—**"यह पुस्तक आर्य समाज का 'सुदर्शन चक्र है जिसके प्रहारों के सामने मतवादियों का ठहरना बड़ा ही कठिन है।"**

इस ग्रन्थ ने अनेक भूले-भटके लोगों को प्रकाश प्रदान किया है। आइए दीपावली के पावन पर्व पर हम भी यह प्रतिज्ञा करें कि हम स्वयं सत्यार्थ प्रकाश पढ़ेंगे और दूसरों को पढ़ायेंगे। प्रस्तुत 'ज्ञान प्रकाश' इसी महान् ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश को समझने की कुंजी है इसे पढ़िए और फिर सत्यार्थ प्रकाश पढ़ जीवन में सब भांति सुख-आनन्द प्राप्त कीजिये। **—ब्र० जगदीश विद्यार्थी**

वेद प्रचार न भूलिए

दीपावली पर आप न जाने कितना व्यय करेंगे, किन्तु इन सब में 'वेद-प्रचार' को न भूलिए। अनेकों महत्वपूर्ण ग्रन्थ धन की कमी से छप नहीं पा रहे। आपका धर्म है कि दीपावली के दिन वेद-प्रचार के लिए कुछ न कुछ अवश्य भेजें। **एक रुपया भेजें या एक हजार रुपया पर भेजें अवश्य।**

'जन-ज्ञान' की उन्नति के लिए जन-ज्ञान के आजीवन सदस्य बनें। सौ रुपये देने से आप को जहाँ 'जन-ज्ञान' जीवन भर मिलता रहेगा, वहाँ, वेद-प्रचार के पवित्र कार्य में आप का सहयोग भी होगा।

अपने किसी प्रिय जन की स्मृति में कोई भी वैदिक ग्रन्थ छपाएँ। श्रद्धा सहित स्मरण का यह सर्वोत्तम उपाय है।

आर्य जन! एकाकी बिना साधनों के जो भारी बोझ हमने उठाया है उसे संभालने में हाथ बँटाएँ। जितना भी आपका सहयोग मिलता जाएगा, काम उतना ही बढ़ेगा। इसीलिए देव दयानन्द के लक्ष्य की पूर्ति के लिए **आपकी सेवा मेंदीपावली के दिन उपस्थित हूं।** ब्राह्मण की झोली में जो भी डालेंगे, स्वीकार होगा। **—भारतेन्द्र नाथ**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

परमेश्वर की उपासना नित्य करें

न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ॥
ऋ० ५।३२।२३॥

पदार्थ :—हे (मघवन्) बहुधनयुक्त (इन्द्र) परम ऐश्वर्य देने वाले जगदीश्वर ! जिससे कोई पदार्थ (न) न (त्वावान्) आपके सदृश (अन्यः) और (दिव्यः) शुद्धस्वरूप पदार्थ है, (न) न (पार्थिवः) पृथिवी पर जाना हुआ है (न) न (जातः) उत्पन्न हुआ है (न) न (जनिष्यते) उत्पन्न होगा, इससे (त्वा) आपकी (अश्वायन्तः) महान् विद्वानों की कामना करने वाले (वाजिनः) विज्ञान और अन्न वाले और (गव्यन्तः) अपने को उत्तम वाणी वा उत्तम भूमि की इच्छा करने वाले हम लोग (हवामहे) प्रशंसा करते हैं।

भावार्थ :—हे मनुष्यो ! जिस कारण परमेश्वर से तुल्य, अधिक अन्य पदार्थ कोई नहीं, उत्पन्न हुआ. न कभी भी उत्पन्न होगा, इससे ही उसकी उपासना और प्रशंसा हम लोग नित्य करें। (—ऋषि भाष्य से)

सत्यार्थ प्रकाश क्यों लिखा ?

मेरा इस ग्रन्थ के बनाने का मुख्य प्रयोजन सत्य २ अर्थ का प्रकाश करना है—अर्थात् जो सत्य है उसको सत्य और जो मिथ्या है उसको मिथ्या ही प्रतिपादन करना सत्य अर्थ का प्रकाश समझा है। वह सत्य नहीं कहाता जो सत्य के स्थान में असत्य और असत्य के स्थान सत्य का प्रकाश किया जावे। किन्तु जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है। जो मनुष्य पक्षपाती होता है कह अपने असत्य को भी सत्य और दूसरे विरोधी मत वाले के सत्य को भी असत्य सिद्ध करने में प्रवृत्त होता है। इस लिए वह सत्य मत को प्राप्त नहीं हो सकता। इसी लिए विद्वान् आप्तों का यही मुख्य काम है कि उपदेश व लेख द्वारा सब मनुष्यों के सामने सत्यासत्य का स्वरूप समर्पित करदें। पश्चात् वे स्वयं अपना हिताहित समझ कर सत्यार्थ का ग्रहण और मिथ्यार्थ का परित्याग करके सदा आनन्द में रहें। मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है। तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि, हठ, दुराग्रह और अविद्यादि दोषों से सत्य को छोड़ असत्य में झुक जाता है। परन्तु इस ग्रन्थ में ऐसी वात नहीं रक्खी है और न किसी का मन दुखाना या किसी की हानि पर तात्पर्य है। किन्तु जिससे मनुष्यजाति की उन्नति और उपकार हो, सत्यासत्य को मनुष्य लोग जानकर सत्य का ग्रहण और असत्य का परित्याग करें, क्यों कि सत्योपदेश के बिना अन्य कोई भी मनुष्यजाति की उन्नति का कारण नहीं है।

उदयपुर, भाद्रपद १९३९ वि० **—(स्वामी) दयानन्द सरस्वती**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

एक

प्रथम समुल्लास के

आधार पर

ईश्वर के अनेक नाम

अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश का प्रथम समुल्लास वस्तुतः ग्रन्थ का मंगलाचरण है। यही कारण है कि प्रत्येक समुल्लास के आरम्भ में जहाँ ऊपर शीर्षक में विषय का संकेत हुआ है, वहाँ प्रथम समुल्लास में इस प्रकार का कोई शीर्षक नहीं है। इसलिए सत्यार्थप्रकाश का प्रारम्भ द्वितीय समुल्लास से ही समझना चाहिए। प्रथम समुल्लास में तो आचार्य ने अपने ग्रन्थ को प्रारम्भ करने के लिये प्रभु का स्मरण किया है। वैदिक संस्कृति में प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ प्रभु स्मरण के साथ करने की परिषाटी है। आचार्य भी इस परिपाटी का पालन करते हुए प्रथम समुल्लास में प्रभु का स्मरण करते हैं। यही मंगलाचरण है, जिसके लिये पतञ्जलि प्रसंग वश लिखते हैं कि '**मंगलादीनि मंगलमध्यान्तानि शास्त्राणि प्रथन्ते**' अर्थात् जिन शास्त्रों का प्रारम्भ, मध्य व अन्त मंगल से होता है वे शास्त्र संसार में विस्तृत होते हैं।

ओ३म् God व अल्लाह

प्राचीन ऋषि मुनि '**ओ३म्**' वा '**अथ**' शब्द से अपने ग्रन्थों का प्रारम्भ किया करते थे। '**ओ३म्**' के अनेक अर्थ होते हुए भी मुख्य प्रचलित अर्थ '**रक्षक**' ही है। '**अव रक्षणे**' धातु से इस शब्द को बनाया जाता है। '**गुड रक्षणे**' भी धातु है, उससे यह God शब्द बन गया है। '**अलं**' वारण-रोकने का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वाचक हैं, 'ला' का अर्थ प्राप्त कराना है (आदान)। विघ्नों के निवारण की शक्ति का आदान किये हुए वे प्रभु 'अल्लाह' हैं। इस प्रकार मूल में ये सब शब्द समानार्थक हैं 'ओ३म्' की मूल धातु 'अव' उन्नीस अर्थों वाली हैं। एवं ओ३म् का अर्थ अधिक व्यापक हो जाता हैं। माण्डूक्योपनिषद् में 'अ उ म्' इस प्रकार तीन मात्राओं को भिन्न-भिन्न धातुओं से बना हुआ प्रतिपादित करके 'अ' से विराट्-अग्निव विश्व आदि नामों, का 'उ' से हिरण्यगर्भ-वायु व तैजस आदि का, तथा 'म्' से ईश्वर-आदित्य व प्राज्ञादि नामों का ग्रहण किया है। एवं 'ओ३म्' का अर्थ बड़ा व्यापक हो जाता है। सिद्धान्तः, यह सारे वेदों का सारभूत हैं। सारे वेदों को एक शब्द में कहना हो तो यही कहेंगे कि 'ओ३म्'। इस बात का ध्यान करते हुए आचार्य ने 'ओ३म्' को प्रभु का सर्वोत्कृष्ट नाम माना है। इस नाम के अतिरिक्त निन्यानवें अन्य नामों का व्याख्यान करके आचार्य ने अपने मंगलाचरण को पूरा किया है। संयोगवश कुरान में भी 'अल्लाह' के अतिरिक्त प्रभु के निन्यानवें और नाम आये हैं और इस प्रकार वहाँ भी प्रभु के सौ ही नाम प्रसिद्ध हुए हैं। 'अथ' शब्द का अर्थ भी है 'प्रभु के रक्षण में' (अ—प्रभु, थ—Protection—रक्षण)।

अग्नि-वायु-इन्द्र

'ओ३म्' के अतिरिक्त प्रभु को 'अग्नि-वायु-इन्द्र' आदि नामों से आचार्य ने स्मरण किया है। यह ठीक है कि ये नाम आग-हवा व सूर्य आदि प्राकृतिक पदार्थों के भी हैं, साथ ही ये नाम प्रभु के भी हैं। जहां भी स्तुति, प्रार्थना, उपासना का प्रसंग हो और सर्वज्ञ, व्यापक, शुद्ध-सनातन आदि विशेषण दीखें; वहाँ इन नामों से प्रभु का ही ग्रहण करना चाहिये। परन्तु जहां उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय का प्रकरण हो और जड़ व दृश्य आदि विशेषण हों, वहाँ प्रभु का ग्रहण न करके इन नामों से लौकिक वस्तुओं का ग्रहण ही उचित है। एक 'ओ३म्' नाम ही ऐसा है जो किसी प्राकृतिक वस्तु का नहीं। यह केवल परमेश्वर का ही नाम है। यह परमेश्वर का निज नाम है। इसलिए भी यह नाम सर्वोत्कृष्ट है। उस प्रभु का निर्देश 'ओ३म्-तत्-सत्' इस प्रकार किया जाता है। इस प्रसिद्ध निर्देश में भी 'ओ३म्, को प्रथम स्थान दिया गया है। यह रक्षक प्रभु (ओ३म्) सर्वव्यापक है (तत्) और सदा निर्विकार रूपेण रहने वाले हैं (सत्)।

हरि ओ३म्

अग्नि आदि नामों की तरह 'हरि' नाम भी दुःखों के हरण करने वाले

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
प्रभु का ही है तथा यह शब्द घोड़े आदि का भी प्रतिपादन करता है यह नाम प्रभु का वाचक अवश्य है परन्तु जब **'ओ३म्'** नाम की सर्वश्रेष्ठता सर्वमान्य है तो ओ३म् नाम से पूर्व किसी और नाम को स्थान देना उतना ठीक नहीं है। **'ओ३म् तत् सत्'** इस निर्देश की तरह **'ओ३म् हरि'** यह निर्देश ही अधिक उपयुक्त है। मध्यकाल में जबकि अनेक सम्प्रदाय आविर्भूत हो गये, उस समय वैष्णव सम्प्रदाय में **'हरि'** विष्णु का नाम होने से अधिक समादृत हो गया और **'हरि ओ३म्'** बोलना उन्हें ठीक लगा। प्राचीन पद्धति का ध्यान करते हुए और साम्प्रदायिक आग्रह से ऊपर उठते हुए हमें **'ओ३म् हरि'** इस रूप में ही प्रभु का स्मरण करना चाहिये।

समुद्र में बिन्दुवत्

इस प्रकार **'ओ३म्'** के अतिरिक्त प्रभु के अनन्त नाम हैं। प्रभु के अनन्त गुण कर्म स्वभाव हैं। प्रत्येक गुण-कर्म-स्वभाव का एक-एक नाम है। यहां आचार्य ने सौ नामों का व्याख्यान किया है। ये सौ नाम तो नाम-सागर के कुछ बिन्दु मात्र ही हैं। यह समझ लेना कि सौ ही नाम हैं यह तो भ्रम ही होगा।

मित्र

प्रभु के नामों में **'मित्र'** यह भी नाम है। इसी प्रकार **'दयालु'** और न्याय-कारी' आदि नाम हैं। ये नाम जीवों के लिए भी प्रयुक्त होते हैं। परन्तु जीवों में यदि कोई किसी का मित्र है, तो किसी दूसरे का कुछ विरोधी भी होता है। इसके विपरीत प्रभु सबके मित्र ही हैं। वे सब पर दया करने वाले हैं। वे कभी अन्याय नहीं करते। जीव कहीं दया करता है, तो कहीं वह दया को नहीं भी करता। अल्पज्ञता के कारण जीव से कुछ अन्याय हो जाने की सदा आशंका है। प्रभु सर्वज्ञ हैं और सर्वशक्तिमान् हैं, सो वे कभी अन्याय व निर्दयता करने वाले नहीं होते। इस प्रकार **मित्र, दयालु व न्यायकारी'** आदि नाम ठीक-ठीक तो प्रभु के ही हो सकते हैं। जीव तो, अंशत: ही, मित्र दयालु व न्यायकारी हो पाता है।

दयालु व न्यायकारी

लोक में **'दया'** शब्द की भावना कुछ इस प्रकार से समझी जाती है कि अपराधी को दण्ड न देकर उसे क्षमा कर देना। परन्तु यदि यह भाव दया का समझा जाय और प्रभु की दया का यही स्वरूप हो तो न्यायकारित्व तो नष्ट ही हो जाय। साथ ही अपराध क्षमा होने सम्भव होने पर पाप करने में भय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
भी जाता रहेगा। इसलिये प्रभु की दया आचार्य के शब्दों में यही है कि प्रभु किसी का अहित नहीं चाहते और उन्नति पथ पर चढ़ने के लिए सब साधनों को समुचित रूपेण प्राप्त कराते हैं। इस दया के साथ न्यायकारित्व का किसी प्रकार से विरोध नहीं। प्रभु न्यायपूर्वक कर्मानुसार जीव को उस-उस स्थिति में प्राप्त कराते हैं। प्रभु का दिया हुआ दण्ड उस जीव के लिए इस प्रकार होता है जैसे कि रोगी को दी जाने वाली औषध। यह कड़वी होती है, पर रोग निवारण के लिये आवश्यक होती है। इसी प्रकार प्रभु से दिया गया दण्ड पाप-प्रवृत्ति को दूर करने के लिए होता है। एवं प्रभु दयालु भी हैं, न्यायकारी भी।

सगुण व निर्गुण

जैसे **'दयालु व न्यायकारी'** इन नामों में विरोध-सा प्रतीत होता है, इसी प्रकार सगुण व निर्गुण नाम भी परस्पर विरुद्ध प्रतीत होते हैं। गुणों से युक्त **'स-गुण'** है और गुणों से रहित **'निर्-गुण'**। लोक में तो साकार को सगुण व निराकार को निर्गुण कहने की भी परिपाटी है। परन्तु सगुण का शब्दार्थ साकार करना तो ठीक है ही नहीं। प्रभु स-गुण इसलिये हैं कि वे ज्ञान, शक्ति दया व न्याय आदि गुणों के सदा साथ होते हैं और जड़ता आदि से रहित होने से वे निर्गुण हैं। प्रकृति के सत्व, रज व तम इन गुणों से ऊपर उठे होने के कारण वे प्रभु निर्गुण हैं। इन गुणों का रक्षण करते हुए भी वे इनसे लिप्त नहीं हैं। **'निर्गुण, गुणोभोक्तृच'**।

ब्रह्मा-विष्णु-महेश

ये निर्गुण होते हुए भी गुणों के भोक्ता (पालक) प्रभु अत्यन्त सूक्ष्म होने से (अणोरणीयान्) प्रकृति को ग्रहण करके उस प्रकृति से इस विकृति रूप संसार का निर्माण करते हैं। इस संसार का वर्धन करने के कारण वे प्रभु **'ब्रह्मा'** हैं—(वृहि वृद्धौ)। उनके ज्ञान में किसी प्रकार की कमी नहीं। इसी से उनके बनाये हुए इस संसार में भी किसी प्रकार की कमी नहीं (पूर्णमदः, पूर्णमिदम्) प्रकृति से इस संसार के निर्माण में वे किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं करते। सर्वशक्तिमान् होते हुए स्वयं ही इसकी रचना करने में वे समर्थ हैं। इस प्रकार वे प्रभु ज्ञान व शक्ति के पुञ्ज हैं। सर्वज्ञ हैं—सर्वशक्तिमान् हैं, ज्ञान के पति हैं। सरस्वती मानो उनकी पत्नी ही हो—पत्नी ही क्या, वे तो स्वयं 'सरस्वती' हैं। इसी प्रकार वे शक्ति के पुञ्ज हैं—**'शक्ति'** ही हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस संसार का निर्माण करके, सबके अन्दर व्याप्त होकर, इन सब पिण्डों को वे धारण कर रहे है। इस व्याप्ति के कारण ही वे 'विष्णु' हैं (विष्लृ व्याप्तौ)। जीवों को भी जीवन धारण के लिए आवश्यक धनों का वे प्रदान करने वाले हैं। सब धनों के स्वामी हैं—लक्ष्मीपति हैं—'लक्ष्मी' ही हैं। अन्य व्यक्ति तो कुछ समय के लिए कुछ स्थान के स्वामी होते हैं। पर ये प्रभु सदा के लिए सबके स्वामी हैं। इसी से 'महेश' कहलाते है—प्रभु ही ईश' या ईश्वर हैं—'परमेश्वर' 'विश्वेश्वर' है। प्रभु के रचे हुए अग्नि आदि पदार्थ 'देव' हैं तो प्रभु महादेव हैं। इन सब अग्नि आदि को देवत्व का वे ही प्रदान करने वाले हैं (तेन देवा देवतामग्र आयन्)। इस सृष्टि के निर्माता प्रभु ही दिन की समाप्ति पर जैसे रात्रि आती है, उसी प्रकार; सृष्टि के समय की समाप्ति पर प्रलय करते हैं। सारे संसार की समाप्ति करने के कारण वे 'काल' कहलाते हैं। स्वयं तो वे "अकाल पुरुष" हैं। इस प्रलय के कारण ही वे उग्र रूप वाले प्रभु 'रुद्र कहलाते हैं। इस रुद्र की शक्ति को ही 'रुद्राणी' कहा जाता है। वही शक्ति 'भवानी' व 'पार्वती' भी कहलाती है। सारे संसार को अपने में समा लेने से—रख लेने से यह भवानी है, सबको अपने में पूर्ण कर लेने से पार्वती हैं (पर्व पूरणे)। इस पार्वती के पति वे 'महादेव' ही हैं। इस प्रलय के समय सारा संसार उस प्रभु में ही शयन करता है। 'शेते यस्मिन्' इस व्युत्पत्ति से वे प्रभु इस समय 'शिव' कहलाता है। प्रभु प्रलय भी जीवों के हित के लिए ही करते हैं। जितना महत्त्व रात्रि का है, वही महत्त्व बड़े परिमाण में प्रलय का है। जीवन के लिए रात्रि भी अत्यन्त आवश्यक है, इसी प्रकार प्रलय भी। जीव अपने जीवन का प्रलयानन्तर फिर नये सिरे से निर्माण करने में समर्थ होता है। इस प्रकार प्रलय करने वाले ये प्रभु वस्तुतः 'शिव' हैं,—कल्याण करने वाले है। शान्ति को प्राप्त कराने वाले ये प्रभु सचमुच 'शंकर' हैं।

बन्धु-पिता-गुरु

अब प्रलय की समाप्ति पर सृष्टि के आरम्भ में सबको कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों में बाँधने वाले ये प्रभु 'बन्धु' हैं। सबको जन्म देने वाले ये प्रभु 'माता' व 'पिता' हैं। पिताओं के भी पिता होने से 'पितामह' व 'प्रपितामह' कहलाते हैं। प्रभु ही ज्ञान देने वाले 'गुरु' है। सब विद्याओं के ज्ञाता 'बुद्ध' हैं, और सब विद्याओं का ग्रहण कराने वाले 'आचार्य' हैं। स पूर्वेषामपि गुरुः

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कालेनानवच्छेदात्' । इस जीवन में हमारे धारण के लिए सब वस्तुओं का निर्माण करने वाले ये 'विधाता' हैं। वेद के द्वारा सब विद्याओं का उपदेश देने वाले "कवि"[1] हैं। इस महान् 'कवि' का अजरामर महान् काव्य वेद ही तो है, 'पश्य देवस्य काव्यं न ममार न जीर्यति' ।

अनादि-अनन्त

इस प्रकार ये प्रभु इस सृष्टि-प्रलय के क्रम को चलाते हैं। अनादि काल से यह चक्र चल रहा है, अनन्त काल तक यह चलता चलेगा। इसको चलाने वाले प्रभु भी स्थान व समय दोनों के दृष्टिकोण से 'अनादि' और 'अनन्त' हैं। 'प्रभु को कोई और बनाने वाला हो', ऐसी बात नहीं। वे तो सदा से स्वयं हैं–'स्वयम्भू' हैं—(खुद-आ) खुदा हैं 'नित्य' हैं। सर्वव्यापक होने के नाते वे कभी शरीर में नहीं आते—'अ-ज' हैं सदा 'मुक्त' है, 'निराकार' होने से उन में किसी भी प्राकृतिक वस्तु के लेप का सम्भव नहीं, सो वे 'निरञ्जन' हैं, 'शुद्ध' हैं। अपनी व्याप्ति से सारे स्थान में पूर्ण होने से 'पुरुष भी कहलाते हैं, सर्वत्र व्याप्त होकर सबका भरण करने वाले ये प्रभु 'विश्वम्भर' हैं। सबके अन्दर प्रविष्ट होकर रहने से ये 'विश्व' हैं। हमारे हृदयों में प्रविष्ट होकर सब कुछ जानते हैं, अन्त: स्थित होते हुए 'अन्तर्यामी' हैं। सबका नियमन करने वाले ये 'यम' हैं।

धर्मराज

पूर्ण धर्म से शोभायमान होते हुए 'धर्मराज' कहलाते हैं। सब युग से (ऐश्वर्य-धर्म-यश-श्री-ज्ञान और वैराग्य) युक्त वे 'भगवान्' हैं। इसीलिए आश्रय करने योग्य होने से 'श्री' हैं, दर्शनीय होने से 'लक्ष्मी' हैं (लक्ष दर्शने)। सब मनुष्यों की अन्तिम शरण ये 'नारायण' ही हैं। सबके उपासना के योग्य होने से ये 'यज्ञ' हैं। सबको अपनी व्याप्ति से आच्छादित किये हुए ये 'कुबेर' हैं (कुवति स्वव्याप्त्या आच्छादयति)। सम्पूर्ण जगत् का विस्तार करने वाले 'पृथिवी' है। सबके आधार होने से 'भूमि' हैं (भवन्ति भूतानि यस्याम्)।

राहु-केतु

पूर्ण ज्ञान वाले ये प्रभु 'मनु' हैं। इस संसार में ये उपासकों के हृदयों को (केतयति) प्रकाशमय करने से 'केतु' हैं। इस प्रकाश को देकर ये अशुभों से हमें पृथक् करते हैं। अशुभों से छुड़ाने के कारण ही 'राहु' हैं (राहयति त्याजयति)। इस प्रकार हमारे निवासों को उत्तम बनाने वाले प्रभु 'वसु' हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हमारे लिए सब आवश्यक वस्तुओं के देने वाले **'होता'** हैं (हु—दाने)। सदा निर्विकार रूप से स्थित होने वाले ये प्रभु **'कूटस्थ'** हैं, 'सत्, हैं। 'चित' होते हुए हमें चेताने वाले हैं। और इस प्रकार अशुभों से बचा कर हमारे जीवनों को आनन्दित करते हैं, स्वयं तो **'आनन्द'** है ही।

पंचभूत

सृष्टि के निर्माता प्रभु **पृथिवी-जल-अग्नि-वायु व आकाश'** इन पंचभूतों से इस संसार का निर्माण करते हैं। यह संसार पञ्चभूतात्मक है। हमारा शरीर भी पाँचभौतिक है। इस शरीर में भी **'पञ्चप्राण'** 'पंच कर्मेन्द्रियाँ' 'पञ्च ज्ञानेन्द्रियाँ' व 'अन्त:करणपञ्चक, (हृदय-मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार) सब पाँच ही पाँच है। सारा संसार ही 'प्र-पञ्च' कहलाता है। इस प्रपञ्च के अधिपति प्रभु इन गुणों के ईश होने से 'गणेश व गणपति' हैं। वे स्वयं हो **'पृथिवी'** है चूँकि वे सम्पूर्ण जगत् का विस्तार करते हैं। इस पृथिवि से उत्पन होने वाला अन्न प्राणियों का प्राणाधार बनता हैं, अन्तिम आधार वो प्रभु ही हैं—प्रभु के आधार से प्राणी अन्न को खाता है, सो प्रभु का भी **'अन्न'** नाम हो गया है। ये प्रभु 'ज' जन्म से 'ल' लय (मृत्यु) तक प्राणी का आधार होने से 'जल' हैं। हमारी अग्रगति का कारण होने से वे प्रभु **'अग्नि'** हैं (अग्रेणी)। गति के द्वारा सब बुराइयों का हिंसन करने के कारण 'वायु' हैं (वा गतिगन्धनयो:)। समन्तात् प्रकाशयम व दीप्त होने के कारण वे 'आ-काश' हैं। निरन्तर गति के कारण ही प्रभु **'आत्मा'** हैं(अत सातत्यगमने)और ज्ञान से दीप्त होने के कारण **'सूर्य'** हैं। ज्ञानमय होने से ही प्रभु 'मनु' हैं। इस प्रकाशमयता को स्पष्ट करने के लिए ही **'देवी'** शब्द का भी प्रभु के लिए प्रयोग होता है (दिव्-द्युतौ)।

सप्ताह

हमारे जीवन जिन वारों में चलते हैं उनमें अन्तिम बार **'रविवार'** कहलाता है। **'रवि'** सूर्य का पर्याय है। इससे स्पष्ट है कि हमारे जीवन का लक्ष्य भी यही होना चाहिए कि हम सूर्य की तरह ज्ञानज्योति से चमकें। इसके लिए हम **'सौम्य'** बनें, यही सोमवार का पाठ है। उद्धतता हमें ज्ञान से दूर ले जाती है। इसकी सौम्यता ही में **'मंगल'** है। यही हमें बुध-ज्ञानी बनायेगी। ज्ञानियों का ज्ञानी बृहस्पति भी हमें यही बनायेगी। इस ज्ञान से हमारे जीवन पवित्र बनेंगे, हम शुक्र (शुचि-पवित्र) होंगे। ऐसा होने पर हम जीवनों में शान्तिपूर्वक (शनै:) बिना किसी व्याकुलता के चलने वाले **'शनैश्चर'** होंगे। ये

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सप्ताह के नाम प्रभु का भी स्मरण कराते हैं। प्रभु **'सोम'** हैं—चन्द्र हैं (सोम चन्द्र 'Monday—moon day' चन्द्रवार) 'चदि आह्लादे'—आनन्दमय हैं, उपासकों को आनन्दित करते हैं। **'मंगल'** हैं 'मगि गतौ'—अपनी सब गतियों से—क्रियाओं से सब का कल्याण करने वाले हैं। **'बुध'** ज्ञानी हैं। **बृहस्पति** हैं—बृहतां पतिः,इन महान् आकाशादि लोकों के स्वामी हैं। शुक्र हैं—स्वयं पूर्ण पवित्र होते हुए उपासकों के जीवन को पवित्र करने वाले हैं। **शनैश्चर** हैं—शान्तभाव से निरन्तर क्रिया को कर रहे हैं। **रवि** हैं (रु, To break अन्धकार को छिन्न-भिन्न करने वाले हैं)।

शान्ति के दाता प्रभु

ये प्रभु **'मित्र'** हैं हमें रोगों से बचाने वाले हैं **'वरुण'** हैं (पापान्निवारयति) हृदयस्थ रूपेण प्रेरणा के द्वारा पाप का निवारण करने वाले हैं। **'अर्यमा'** हैं—अर्थात् "मिमीते" जितेन्द्रियों को मान प्राप्त कराने वाले हैं। **'इन्द्र'** हैं (इदि परमैश्वर्ये) परमैश्वर्यशाली हैं अथवा हमारे शत्रुओं का विद्रावण करने वाले हैं। **'बृहस्पतिः'** हैं=विशालता के स्वामी हैं, प्रभु में संकोच व अल्पता नहीं है। **'विष्णु'** : व्यापक हैं। उरुक्रमः=उरुक्रम हैं—विशाल पराक्रम वाले व महती व्यवस्था वाले। ये प्रभु हमें भी 'मित्रता—निष्पापता—जितेन्द्रियता—कामादि शत्रुओं का विद्रावण—विशालता—व्यापकता व व्यवस्था' का पाठ पढ़ाते हुए शान्ति प्राप्त कराने वाले होते हैं। शान्ति-प्राप्ति के वस्तुतः यही साधन हैं।

अ उ म्

प्रभु के निज नाम ओ३म् की **अ उ म्** इन मात्राओं से विराट, अग्नि, विश्व, हिरण्यगर्भ, तैजस, वायु व ईश्वर, आदित्य और प्राज्ञ इन नामों की सूचना मिलती है। सब अक्षरों में **'अ'** का विशिष्ट स्थान है। व्यञ्जनों की अपेक्षा स्वर महत्वपूर्ण हैं। स्वर 'स्वयं राजन्ते' स्वयं प्रकाशमान हैं। व्यञ्जन तो स्वरों की सहायता से प्रकट होते हैं (व्यञ्जन्ते) स्वरों में 'अ' विशेष रूप से चमकता है, **'विराट्'** है। प्रभु विराट् हैं प्रकृति व जीव की अपेक्षया विशिष्ट दीप्तिवाले हैं। **'अ'** सब व्यञ्जनों में प्रविष्ट है प्रभु भी प्रत्येक पिण्ड में प्रविष्ट हैं **'विश्व'** हैं। **'अ'** अक्षरों में प्रथम स्थान है—'अग्नि, है **'अग्रणी'**। प्रभु भी 'अग्नि' है। **'उ'** रक्षणे उ धातु रक्षण अर्थ वाली है। वायु जीवन का रक्षक है—सो **'उ'** है। सर्व महान् रक्षक प्रभु हैं, वे भी **'उ'** अर्थात् **'वायु'** हैं। **'उ'** उत्कर्ष का वाचक है—सब ज्योतिर्मय पिण्डों को अपने गर्भ में लिए हुए प्रभु सर्वोत्कृष्ट हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
ज्योतिर्मय पिण्डों को 'हिरण्य' कहते हैं, सो प्रभु हिरण्यगर्भ होते हुए सर्वोत्कृष्ट होने से 'उ' हैं। इस सर्वोत्कर्ष के कारण ही वे 'तैजस' हैं, वहाँ किसी प्रकार की मलिनता नहीं। सब मलिनतायें वहाँ दग्ध हो जाती हैं।'म्' मात्रा 'मितेः' मापने की सूचना दे रही है। सब पदार्थों के–मापने वाले,जानने वाले प्रभु **'प्राज्ञ'** हैं मापने का भाव 'बनाना' भी है। इन सब पदार्थों का **'निर्माण'** करने वाले प्रभु इन सब पदार्थों के **'ईश्वर'** हैं,मालिक हैं। अन्त में इन्हें अपने अन्दर ले लेने से 'मिनोति ह वा इदं सर्वम्' प्रभु आदित्य हैं। सब का अपने अन्दर आदान कर लेने वाले हैं। इस प्रकार **'अ उ म्'** ये मात्रायें प्रभु के विभिन्न नामों का संकेत करती हैं।

उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय

ये प्रभु स्वयं **'अक्षर'** हैं—कभी नष्ट नहीं होते। इस प्रकृति के कण-कण में व्याप्त होने से ये 'आप्त' कहलाते हैं (आप् व्याप्तौ)। उन प्रकृति कणों से ये सृष्टि का निर्माण करते हैं। इस निर्माण के कार्य में इन्हें किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं होती—ये स्वयं देदीप्यमान 'स्व-राष्ट्' हैं। सृष्टि का निर्माण करके उसका ये उत्तमता से पालन करते हैं 'सुपर्ण' हैं। किसी का भी अमंगल न करने के कारण ये **'प्रिय'** हैं। इस संसार के महान् भार को उठाकर गतिमय होने के कारण 'गरुत्मान्' हैं। आचार्य के शब्दों में **'महान्'**(गुरु) स्वरूप वाले हैं। इस अनन्त से ब्रह्माण्ड को अपने अन्दर लिए वे सचमुच कितने महान् है सम्पूर्ण अन्तरिक्ष में गति करते हुए वे **'मातरिश्वा'** हैं। अन्त में वे इस सृष्टि को प्रलय निद्रा में सुलाने वाले 'कालाग्नि' हैं। सबको अपने अन्दर लेकर समाप्त-सा करके—स्वयं बचे रह जाने से **'शेष'** हैं। **'शेष'** का पर्याय वेद में **'उच्छिष्ट'** भी है। 'ऊर्ध्व शिष्यते' प्रलय हो जाने पर भी बचे रहते हैं। सब कोई सो गया, तो भी प्रभु जागते हैं 'आनीद् अवातं स्वधया तदेकम्'। ●

जो आपकी (ईश्वर की) आज्ञा है वही धर्म और जो इससे विरुद्ध है वही अधर्म है।

जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है। ●

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

द्वितीय समुल्लास के
आधार पर

शिक्षा कैसी हो ?

प्रत्येक कार्य का प्रारम्भ मंगलाचरण व प्रभु स्मरण से करने की परिपाटी के अनुसार आचार्य ने प्रथम समुल्लास में प्रभु के १०० नामों का व्याख्यान करते हुए प्रभु स्मरण किया है। अब द्वितीय समुल्लास से विषय के प्रतिपादन का प्रारम्भ होता है। प्रथम समुल्लास में ऊपर कोई शीर्षक नहीं दिया गया था। इस समुल्लास का शीर्षक है **'अथ शिक्षां प्रवक्ष्यामः'**। शिक्षा से ही जीवन का निर्माण होता है, यहीं से सत्यार्थ प्रकाश का प्रारम्भ होता है। शतपथ ब्राह्मण का वचन है **'मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद'** वस्तुतः जब तीन उत्तम शिक्षक, अर्थात् एक माता, दूसरा पिता, तीसरा आचार्य होवे तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है। इनमें भी जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुंचता है, उतना अन्य किसी से नहीं। आदिपर्व में हम पढ़ते हैं कि **'गुरुणाञ्चैव सर्वेषां माता परमको गुरुः'** सब गुरुओं में परमगुरु माता ही तो है। धन्य वह माता है कि जो गर्भाधान से लेकर जब तक पूरी विद्या न हो तब तक सुशीलता का उपदेश करे। गर्भस्थ बालक पर माता की प्रत्येक क्रिया का प्रभाव पड़ता है। नारद ने गर्भावस्था में ही वेद ज्ञान प्राप्त किया था। अभिमन्यु ने चक्रव्यूह में प्रवेश का शिक्षण भी तो गर्भावस्था में ही प्राप्त किया था।

अन्न—माता पिता को अति उचित है कि गर्भाधान के पूर्व मध्य और पश्चात् घृत दुग्ध मिष्ट अन्नपान आदि श्रेष्ठ पदार्थों का सेवन करें, जिससे रजस् वीर्य दोषों से रहित होकर अत्युत्तम गुणयुक्त हों। यह भूलना नहीं चाहिए कि **'यदन्नं भक्षयेन्नित्यं जायते तादृशी प्रजा'** जैसा अन्न खाते हैं वैसी ही सन्तान हुआ करती है।

समागमः—गर्भ स्थिति के पश्चात् एक वर्ष तक संयुक्त न हों। गर्भाधान से पूर्व दोनों के शरीर में आरोग्य, परस्पर प्रसन्नता हो और किसी प्रकार का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
शोक न हो। गर्भाधान के पश्चात् स्त्री को बहुत सावधानी से भोजन छादन करना चाहिए। बालक के जन्म के बाद भी स्त्री के भोजन का यथा योग्य प्रवन्ध करें कि जिससे बालक और स्त्री का शरीर क्रमशः आरोग्य और पुष्ट होता जाये। ऐसा पदार्थ माता खाये कि दूध में भी उत्तम गुण प्राप्त हों। माता व पिता ब्रह्मचर्य (संयम) को महत्व दें, तभी सन्तान उत्तम होंगे।

माता के द्वारा शिक्षण

(i) वालकों को माता सदा उत्तम शिक्षा द्वारा सभ्य व उत्तम चेष्टाओं वाला बनायें।

(ii) जब बालक बोलने लगे तब माता ऐसा उपाय करे कि जिह्वा कोमल होकर स्पष्ट उच्चारण करने वाली हो।

(iii) जब वह कुछ-कुछ बोलने और समझने लगे तब सुन्दर वाणी, व बड़ों के समीप शिष्टता से बैठने आदि का शिक्षण करे।

(iv) माता ऐसा प्रयत्न करे कि सन्तान जितेन्द्रिय, विद्याप्रिय व सत्संग में रुचि वाली बनें। व्यर्थ क्रीड़ा, रोदन, हास्य, लड़ाई, हर्ष, शोक, लोलुपता, ईर्ष्या दोष आदि न करें।

(v) सदा सत्यभाषण, शौर्य, धैर्य, प्रसन्नवदन आदि गुणों की प्राप्ति जिस प्रकार हो करावें।

(vi) जब पाँच-पाँच वर्ष के लड़का लड़की हों तब देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करावें। अन्य देशीय भाषाओं के अक्षरों का भी। अब उत्तम शिक्षाप्रद मन्त्रों, श्लोकों और सूत्रों को कण्ठस्थ करावें।

(vii) यह भी समझा दें कि—

(क) भूत-प्रेत आदि कुछ नहीं होते।

(ख) मन्त्र-यन्त्र आदि बंधवाते फिरना अज्ञानियों के काम है।

(ग) सूर्य आदि कोई क्रूर ग्रह नहीं होते। जैसी यह पृथिवी जड़ है वैसे ही सूर्यादि लोक हैं। क्या ये चेतन हैं, जो क्रोधित होकर दुःख और शान्त हो कर सुख दे सकें? सुख-दुःख पुण्य और पाप का फल है, ग्रहों का नहीं। गणित विभाग (Astronormy) तो ठीक है पर फलित ज्योतिष (Astrology) अर्थात् फल की लीला वाली ज्योतिष झूठ है। इसके आधार पर बनी जन्म-पत्री भी शोकपत्री ही है।

(घ) बाल्यावस्था से ही सन्तानों के हृदय में यह डाल दें कि 'लीला

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रसायन, मार मोहन उच्चाटन, वशीकरण' आदि मिथ्या बातें हैं। वीर्यरक्षण में ही आनन्द है, और नाश में दु:ख प्राप्ति है। इसके रक्षण में यह रीति है कि विषयों की कथा व विषयी लोगों के संग से पृथक् रह कर ब्रह्मचर्य उत्तम शिक्षा व पूर्णविद्या को प्राप्त करें।

माता, पिता आचार्य :—जन्म से पांचवें वर्ष तक माता बालकों को शिक्षित करे। वह उनके चरित्र का निर्माण का पूरा ध्यान करे। माता की प्रत्येक क्रिया का बालक के चरित्र निर्माण पर प्रभाव पड़ना है। सो माता को अत्यन्त सावधान रहना है। माता का अर्थ ही निर्माण करने वाली है। अब छठवें से आठवें वर्ष तक बालक के जीवन में शिष्टाचार का स्थापन पिता ने करना है। इस आयु में बालक को पिता के साथ इधर-उधर सभी समाजों व परिचितों के गृहों पर जाने का प्रसंग होता है। वहाँ किस प्रकार उठना-बैठना व वर्तना, इसकी शिक्षा पिता ने ही देनी है। शिष्टाचार से ही कुलीनता का आभास मिलता है, सो आचार का शिक्षण नितान्त आवश्यक है। अब ९वें वर्ष के आरम्भ में द्विज अपने सन्तानों का उपनयन कर के आचार्य-कुल में अर्थात् जहाँ पूर्ण विद्वान् और पूर्ण विदुषी स्त्री शिक्षा और विद्यादान करने वाली हों वहाँ लड़के और लड़कियों को भेज दें।

शिक्षा में दण्ड का स्थान

जो सन्तानों व शिष्यों का लाड़न करते हैं, वे अपने सन्तानों और शिष्यों को विष पिला के नष्ट-भ्रष्ट कर देते हैं, क्योंकि लाड़न से सन्तान और शिष्य दोषयुक्त तथा ताड़ना से गुणयुक्त होते हैं। परन्तु माता-पिता व अध्यापक लोग ईर्ष्या-द्वेष से लाड़न न करें। किन्तु ऊपर से भय प्रदान और भीतर से कृपा दृष्टि रखें।

आचार

आचार्य ने ज्ञान के साथ सदाचार का भी ग्रहण कराना है। आचार्य की व्युत्पत्ति ही है 'आचारं ग्राहयति' आचार का ग्रहण कराता है। आचार्य ने विद्यार्थी को अच्छी प्रकार समझा देना है कि (१) कभी मिथ्या भाषण नहीं करना : जैसी हानि प्रतिज्ञा के मिथ्या करने वाले की होती है वैसी अन्य किसी की नहीं। इससे जिसके साथ जैसी प्रतिज्ञा करनी, उसके साथ वैसी ही पूरी करनी चाहिए। अर्थात् जैसे किसे ने किसी को कहा कि 'मैं तुम को अमुक समय में मिलूँगा, अथवा अमुक वस्तु अमुक समय में तुम को दूँगा, इसको

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वैसी ही पूरी करे। नहीं तो उसकी प्रतीति कोई भी न करेगा। इसलिए सदा सत्य भाषण और सत्य प्रतिज्ञायुक्त सबको होना चाहिए।

(२) किसी को अभिमान न करना चाहिए। अहंकार से ही सब दुःख होते हैं। योगशिखोपनिषत् में कहा है कि 'अहंकारेण बिना यद् देहे दुःखं कथं भवेत्' अहंकार न हो, तो दुख भी न हों।

(३) छल कपट व कृतघ्नता से अपना ही हृदय दुःखित होता है तो औरों का तो क्यों न दुःखित हो।

छल और कपट उसको कहते हैं जो कि भीतर और बाहर और एक, दूसरे को मोह में डाल, और दूसरे की हानि पर ध्यान न देकर स्वप्रयोजन सिद्ध करना।

कृतघ्नता उसको कहते हैं कि किसी के किये हुए उपकार को न मानना।

(४) क्रोधादि दोष और कटुवचन छोड़ शान्त और मधुर वचन ही बोले और बहुत बकवाद न करे।

(५) जितना बोलना चाहिए उससे न्यून व अधिक न बोलें।

(६) बड़ों को मान दें, उनके सामने उठ कर उन्हें उच्चासन पर बिठावें।

(७) सभा में वैसे स्थान में बैठे जैसी अपनी योग्यता हो और दूसरा कोई न उठावे।

(८) विरोध किसी से न करे।

(९) सम्पन्न होकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग रखे।

(१०) सज्जनों का संग और दुष्टों का त्याग आवश्यक है।

(११) अपने माता पिता व आचार्य की तन मन धन से सेवा करें।

(१२) सदा प्रभु की उपासना करें।

(१३) जिस प्रकार आरोग्य विद्या और बल प्राप्त हो उसी प्रकार भोजन छादन और व्यवहार करें। जितनी क्षुधा हो उससे कुछ न्यून भोजन करें। मद्य-मांस आदि के सेवन से अलग रहें।

(१४) अज्ञात गम्भीर जल में प्रवेश न करें, क्योंकि जल-जन्तु व किसी अन्य पदार्थ से दुःख होना सम्भव है। मनु ने इसलिए कहा है कि **'नाविज्ञाते जलाशये'** अज्ञात जलाशय में प्रवेश न करें।

(१५) नीचे दृष्टि करके ऊँचे-नीचे स्थान को देख कर चलें (**दृष्टि पूतं**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

न्यसेत् पादम्) वस्त्र से छान कर जल को पीयें (वस्त्र पूतं जलं पिबेत्) सत्य से पवित्र करके वचन बोले (सत्यपूतां वदेद् वाचम्) मन से विचार के आचरण करे (मनः पूतं समाचरेत्)।

आचार्य की अभिमान-शून्यता :—आचार्य विद्यार्थी को ज्ञान से भरने का प्रयत्न करता है। जैसे माता-पिता ने 'धर्म, विद्या, अच्छे आचरण के श्लोक, निघण्टु, निरुक्त, अष्टाध्ययी अथवा अन्य सूत्र व वेदमन्त्र कण्ठस्थ कराये हों' उन-उन का पुनः अर्थ विद्यार्थियों को आचार्य विदित करावे। इस प्रकार आचार्य विद्यार्थी को ज्ञानपूर्ण व सदाचारी बना कर कहता है कि **'यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि'** जो-जो हमारे धर्मयुक्त कर्म हैं उन-उन का ग्रहण करो और जो-जो दुष्ट कर्म हों उनका त्याग कर दिया करो। इस कथन में आचार्य की कितनी निरहंकारिता टपकती है। वस्तुतः इस प्रकार के आदर्श आचार्य ही उत्तम विद्यार्थियों का निर्माण कर सकते हैं। आचार्य ने जो ज्ञान देना है, उसका विचार अगले समुल्लास में विस्तृत रूप से किया गया है। इस समुल्लास का मुख्य विषय तो माता-पिता से दी जाने वाली शिक्षा ही है।

महर्षि ने कहा था—

वस्तुतः—जब तीन उत्तम शिक्षक अर्थात् एक माता दूसरा पिता और तीसरा आचार्य होवे, तभी मनुष्य ज्ञानवान् होता है।

वह कुल धन्य ! वह सन्तान बड़ी भाग्यवान ! जिसके माता धार्मिक विद्वान् हों।

जितना माता से सन्तानों को उपदेश और उपकार पहुँचता है उतना किसी से नहीं। जैसे माता सन्तानों पर प्रेम और उनका हित करना चाहती है, उतना अन्य कोई नहीं करता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

तीन

तृतीय समुल्लास के आधार पर

अध्ययन-अध्यापन विधि

अमूल्य आभूषण

अब तीसरे समुल्लास में पढ़ने-पढ़ाने का प्रकार लिखते हैं। सन्तानों को उत्तम विद्या-शिक्षा, गुण और स्वभाव रूप आभूषणों को धारण कराना माता पिता, आचार्य और सम्बन्धियों का मुख्य कर्म है। सोने चांदी माणिक मोती मूंगा आदि रत्नों से युक्त आभूषणों के धारण कराने से मनुष्य का आत्मा सुभूषित कभी नहीं हो सकता, क्योंकि आभूषणों के धारण करने से केवल देहाभिमान, विषयासक्ति और चोर आदि का भय तथा मृत्यु भी सम्भव है। संसार में देखने में आता है कि आभूषणों के लोभ से बालकादिकों की मृत्यु दुष्टों के हाथ से होती है। इसलिए आठ वर्ष के हों तभी लड़कों को लड़कों की और लड़कियों को लड़कियों की पाठशाला में भेज देवें।

शिक्षणालय के नियम

(१) लड़कों और लड़कियों की पाठशालायें अलग-अलग हों। द्विज अपने घर में लड़कों का यज्ञोपवीत और कन्याओं का भी यथायोग्य संस्कार कर के (मुण्डन आदि पर बल न देते हुए) यथोक्त आचार्य कुल, अर्थात् अपनी-अपनी पाठशाला में भेज दें।

(२) जो अध्यापक पूर्ण विद्यायुक्त धार्मिक हों वे ही पढ़ाने व शिक्षा देने योग्य हैं।

(३) विद्या पढ़ने का स्थान एकान्त देश में होना चाहिए। लड़के और लड़कियों की पाठशाला दो कोस एक दूसरे से दूर होनी चाहिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(४) जो वहाँ अध्यापिका और अध्यापक पुरुष व भृत्य अनुचर हों वे कन्याओं की पाठशाला में सब स्त्री और पुरुषों की पाठशाला में पुरुष रहें। स्त्रियों की पाठशाला में पाँच वर्ष का लड़का और पुरुषों की पाठशाला में पाँच वर्ष की लड़की भी न जाने पावे। इस प्रकार होने पर ही वे उत्तम विद्या व शिक्षा को नित्य बढ़ा सकेंगे।

(५) पाठशालाओं से एक योजन अर्थात् चार कोस दूर ग्राम व नगर रहे, ताकि विद्यार्थी नागरिक हलचलों व वातावरण से प्रभावित न हो कर पढ़ने में लगे रहें। उनकी एकमात्र कामना विद्या प्राप्ति की ही हो।

(६) सबको तुल्य वस्त्र, खान-पान आसन दिये जायें, चाहे वह राजकुमार व राजकुमारी हों चाहे दरिद्र के सन्तान हों। सब को तपस्वी होना चाहिये।

(७) उनके माता-पिता अपने सन्तानों से व सन्तान अपने माता-पिता से न मिल सकें और न किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार एक दूसरे से कर सकें, जिससे संसारी चिन्ता से रहित होकर केवल विद्या पढ़ने की चिन्ता रखें।

(८) जब भ्रमण करने को जायें तब उनके साथ अध्यापक रहें जिससे किसी प्रकार की कुचेष्टा न कर सकें और न आलस्य प्रमाद करें।

शिक्षा के लिए राजनियम

इसमें राजनियम व जातिनियम होना चाहिए कि पाँचवें व आठवें वर्ष से आगे कोई अपने लड़कों व लड़कियों को घर में न रख सकें। पाठशाला में अवश्य भेज दें। जो न भेजे वह दण्डनीय हो। यही बात मनु ने '**कन्यानां सम्प्रदानं च कुमाराणां च रक्षणम्**' इन शब्दों में कही है।

गायत्री मन्त्र का उपदेश

पिता-माता व अध्यापक सन्तानों का यज्ञोपवीत करके उनको अर्थ सहित गायत्री मन्त्र का उपदेश कर दें। ऋग्, यजु, साम रूप मन्त्रों के सारभूत ही इस गायत्री के तीन चरण हैं : '**तत्सवितुर्वरेण्यं, भर्गो देवस्य धीमहि, धियो यो नः प्रचोदयात्**'। इन तीन चरणों का भी सार क्रमशः '**भूः, भुवः, स्वः**' ये तीन महाव्याहृतियाँ हैं। इन महाव्याहृतियों की सारभूत 'अ उ म्' ये तीन मात्रायें हैं जिनसे 'ओ३म्' परमात्मा के इस सर्व श्रेष्ठ नाम की रचना हुई है। सो इस मन्त्र के उपदेश के द्वारा वेद के उपदेश का आरम्भ होता है।

मन्त्रार्थ :—वे सर्वरक्षक प्रभु (ओ३म्) हमारे जीवन में 'प्राण, अपान व व्यान शक्ति को देने वाले हैं। प्राण को देकर प्रभु हमें सुखी करते हैं। अपान

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शक्ति के द्वारा दुःखों को दूर करते हैं और व्यान के द्वारा हमारा धारण करते हैं। उस उत्पादक और प्रेरक (सवितुः) दिव्य गुणमय सर्वज्ञ (देवस्य) प्रभु के वरने योग्य (वरेण्यं) उस तेज को (तत् भर्गः) हम धारण करें । उन प्रभु के तेज को धारण करें (यः) जो कि (नः धियः) हमारी बुद्धि को (प्रचोदयात्) बुरे कामों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

संध्योपासनः—इस प्रकार गायत्री मन्त्र का उपदेश करके संध्योपासन की जो स्नान आचमन प्राणायाम आदि क्रियाएँ हैं, सिखलावें। **स्नान** से शरीर के वाह्य अवयवों की शुद्धि और आरोग्य आदि होते है (अद्भिर्गात्राणि शुध्येन्ति) सो स्नान भोजन से पूर्व तो अवश्य कर ही लेना । **आचमन** उतने जल को हथेली में लेके उसके मूल और मध्य देश में ओष्ठ लगा कर करे कि वह जल कण्ठ के नीचे हृदय तक पहुँचे, न उससे अधिक न न्यून । इससे कण्ठस्थ कफ की निवृत्ति थोड़ी सी होती है। इसके साथ ही **मार्जन** अर्थात् मध्यमा और अनामिका अंगुली के अग्र भाग से नेत्रादि अंगों पर जल छिड़के, उससे आलस्य दूर होता है। जो आलस्य और जल प्राप्त न हो तो न करें । पुनः समंत्रक **प्राणायाम** करे । 'अमृतनाद' उपनिषद् में हम पढ़ते हैं कि **सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्री शिरसा सहत्रिः पठेदाभ्यत प्राणः प्राणायामः स उच्यते'** प्राण का संयम करके 'ओ३म्' व 'भूर्भुवः स्वः' के साथ तीन बार गायत्री का उच्चारण करे, यह एक प्राणायाम होता है । अथवा 'ओ३म् भूः' आदि सातों व्याहृतियों के साथ इसे करना । जब मनुष्य प्राणायाम करता है तब प्रतिक्षण उत्तरोत्तर काल में अशुद्धि का नाश और ज्ञान का प्रकाश होता जाता है, विवेकख्याति तक उसके आत्मा का ज्ञान बराबर बढ़ता जाता है । (**योगाङ्गानुष्ठानाद् अशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेख्यातेः**)। जैसे अग्नि में तपाने से सुवर्णादि धातुओं का मल नष्ट होकर शुध होते हैं, वैसे प्राणायाम करके मन आदि इन्द्रियों के दोष क्षीण होकर निर्मल हो जाते हैं (**दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथामलाः। तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात्**)।

प्राणायाम विधि :—

जैसे अत्यन्त वेग से वमन होकर अन्न जल बाहिर निकल जाता है, वैसे प्राण को बल से बाहिर फेंक के बाहिर ही यथाशक्ति रोक देवे। जब बाहिर निकालना चाहे तब मूलेन्द्रिय को ऊपर खींच रखें। इसी प्रकार प्राण बाहिर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अधिक ठहर सकता है। जब घबराहट हो तब धीरे-धीरे भीतर वायु को लेके फिर भी वैसा ही करता जाये, जितना सामर्थ्य और इच्छा हो। और मन में 'ओ३म्' का जप करता जाये।

लाभ :—

इस प्रकार करने से आत्मा और मन की पवित्रता और स्थिरता होती है। प्राण अपने वश में होने से मन और इन्द्रिय भी स्वाधीन होते हैं। बल पुरुषार्थ बढ़ कर बुद्धि तीव्र सूक्ष्म रूप हो जाती है, जो बहुत कठिन और सूक्ष्म विषय को भी शीघ्र ग्रहण करती है। इससे मनुष्य के शरीर में वीर्य वृद्धि को प्राप्त होकर स्थिर बल पराक्रम जितेन्द्रियता सब शास्त्रों को थोड़े हो काल में समझ कर उपस्थित कर लेगा। स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे। अब प्राणायाम के बाद **मनसापरिक्रमण, उपस्थान,** पीछे परमेश्वर की स्तुति प्रार्थना व उपासना की रीति सिखलावें। पश्चात् **'अघमर्षण'** अर्थात् पाप करने की इच्छा भी कभी न करे।

स्थान :—

यह संध्योपासन एकान्त देश में एकाग्रचित से करे। **'अपां समीपे नियतो नैत्यिकं विधिमास्थितः। सावित्रीमप्यधीयीत गत्वारण्यं समाहितः'** एकान्त देश में जा सावधान होके जल के समीप स्थित होके नित्य कर्म को करता हुआ गायत्री मन्त्र का उच्चारण अर्थज्ञान और उसके अनुसार अपने चाल-चलन को करे। परन्तु यह जप मन से करना उत्तम है। न्यून-से-न्यून एक घण्टा ध्यान अवश्य करे। जैसे समाविस्थ होकर योगी लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, वैसे ही संध्योपासन भी किया करे।

देवयज्ञ :—

संध्योपासन 'ब्रह्मयज्ञ' कहलाता है। दूसरा देवयज्ञ है, इसे ही 'अग्निहोत्र' कहते हैं। संध्या और अग्निहोत्र सायं प्रातः दो ही काल में करे। दो ही रात और दिन की सन्धिवेला हैं,अन्य नहीं। तथा सूर्योदय के पश्चात् और सूर्यास्त के पूर्व अग्निहोत्र करने का समय है। इस समय सूर्य किरणों के होने पर अग्निहोत्र में अग्नि ज्वलन से उत्पन्न न्यून कार्बन द्वि-ओषजिद (Co_2) गैस वृक्षों के पत्तों द्वारा विभक्त कर ली जाती है और कार्बन तो वृक्ष का भोजन हो जाती है और (O_2) अम्लजन पुनः वायुमण्डल का अंग बन कर प्राणियों के स्वास्थ्य का कारण बनती है। यही भाव ऋग्वेद (१-९८-१) में **'वैश्वानरो यतते**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सूर्येण' इन शब्दों से व्यक्त हो रहा है। ऋ. ७-७२-४ में भी उषाकाल को संध्या का समय व सूर्योदय को अग्नि होत्र का समय कहा गया है (वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्तो। ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो श्रेद् वृहदग्नयः समिधा जरन्ते)।

उपकरण :—

(१) अग्निहोत्र के लिए वेदी धातु व मिट्टी की इस प्रकार बनावें कि ऊपर जितनी चौड़ी हो उसकी चतुर्थांश नीचे चौड़ी रहे।

(२) इस कार्य के लिए चन्दन पलाश व आम्रादि के श्रेष्ठ काष्ठखण्ड लिए जायें।

(३) घृत व जल के लिए उचित पात्रों को जुटा लिया जाये।

हवन :—

भूरग्नये स्वाहा' आदि मन्त्रों से सोलह आहुतियां दी जाय। प्रत्येक मनुष्य को सोलह-सोलह आहुति और छः-छः माशे घृतादि एक-एक आहुति का परिमाण न्यून-से-न्यून चाहिए। और जो इससे अधिक करें तो बहुत अच्छा है। अधिक आहुति देना हो तो 'विश्वानि देव' और गायत्री मन्त्र से आहुति देवें।

लाभः—अग्निहोत्र द्वारा दुर्गन्धित वायु का छेदन होकर सुगन्धित वायु का प्रसार होता है, उससे आरोग्य व सुख की प्राप्ति होती है। अग्नि में डाला हुआ पदार्थ सूक्ष्म होके वायु के साथ दूर देश में जाकर दुर्गन्ध की निवृत्ति करता है, केसर कस्तूरी आदि घर में रखे होने पर सुगन्ध बेशक फैलायें, पर वे गृहस्थ वायु को बाहिर निकाल कर शुद्ध वायु का प्रवाह नहीं करा सकते। अग्नि ही का सामर्थ्य है कि दुर्गन्धित वायु को छिन्न-भिन्न हलका करके बाहिर निकाल कर पवित्र वायु का प्रवेश कर देता है।

न करने में पापः—जिस मनुष्य के शरीर से जितना दुर्गन्ध उत्पन्न होके वायु और जल को बिगाड़ कर रोगोत्पत्ति का निमित्त होने से प्राणियों को दुःख प्राप्त कराता है उतना ही पाप मनुष्य को होता है। इसलिये उस पाप के निवारणार्थ उतना सुगन्ध व उससे अधिक वायु व जल में फैलाना चाहिये। जितना घृत और सुगन्धादि पदार्थ एक मनुष्य खाता है उतने द्रव्य के होम से लाखों मनुष्यों का उपकार होता है। अच्छे पदार्थ खिलाना पिलाना भी चाहिये परन्तु उससे होम अधिक करना उचित है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ब्रह्मचर्याश्रम—इस आश्रम में यज्ञों में केवल संध्योपासन व अग्निहोत्र ही करना होता हैं। शेष समय तन्मयता से विद्याध्ययन में ही बिताना ठीक है। गुरु के समीप रह कर ३८ वर्ष, १८ वर्ष व न्यून से न्यून ९ वर्ष तथा जब तक विद्या पूरी न कर ले तब तक अध्ययनत रहना ही ठीक है। कनिष्ठ ब्रह्मचर्य २५ वर्ष तक का है। ब्रह्मचारी कहता है कि जो मैं ब्रह्मचर्य का लोप न करूं, २५ वर्ष के पश्चात् गृहाश्रम करूंगा तो रोगरहित रहूंगा और आयु भी मेरी ७०, वर्ष तक रहेगी। मध्यम ब्रह्मचर्य वह जो मनुष्य ४४ वर्ष पर्यन्त ब्रह्मचारी रह कर वेदाभ्यास करता है। उत्तम ब्रह्मचर्य४८ वर्ष का है। माता-पिता की यही कामना व पुरुषार्थ हो कि उनके सन्तान उत्तम ब्रह्मचर्य का सेवन करके पूर्ण अर्थात् चार सौ वर्षपर्यन्त आयु को बढ़ावें। जो भी इस ब्रह्मचर्य का लोप नहीं करते वे सब प्रकार से रोगों से रहित होकर 'धर्म अर्थ काम और मोक्ष' को प्राप्त होते हैं। कनिष्ठ ब्रह्मचारी 'वसु' है–उत्तम नीरोग (स्वस्थ) निवास वाला। मध्यम ब्रह्मचारी (रुद्र) है–सब वासना रूप शत्रुओं को रुलाकर पवित्र मन वाला। उत्तम ब्रह्मचारी 'आदित्य' है सब ज्ञान विज्ञान के प्रकाश से सूर्यसमदीप्ति वाला।

जीवन यात्रा का सामान्य क्रमः—सुश्रुत के अनुसार शरीर सोलह वर्ष तक तेजी से बढ़ता है, पच्चीसवें में पुरुष युवा हो जाता है, चालीसवें तक जो वृद्धि होनी होती है वह हो जाती है, सत्तर तक सामान्य स्थिति रह कर कुछ घटना प्रारम्भ हो जाता है। विवाह के लिए सामान्य नियम यही है कि पुरुष २५वें में और स्त्री सोलहवें में गृहस्थ में प्रवेश करें। इसी प्रकार जितनी अधिक उमर में गृहस्थी बनें अच्छा ही है। ४०वां वर्ष विवाह के लिए उत्तम है, ४८वां उत्तमोत्तम है। इसके बाद गृहस्थ में जाना हो तो चले ही जाना चाहिये। गृहस्थ में जा कर भी स्वाध्याय प्रवचन को–पढ़ने-पढ़ाने को तिलाञ्जली नहीं दे देनी, अपितु ऋतु (समय पर सब कार्यों को करना) सत्य, तप, दम (बाह्येन्द्रियों का संयम) व शम (मन संयम) का पालन तो करना ही चाहिये परन्तु पठनपाठन का त्याग न कर देना चाहिये। घर में प्रज्वलित की जाने वाली पाकशाला आदि की अग्नियों को तो प्रज्वलित करना ही है, परन्तु पढ़ना-पढ़ाना नहीं छोड़ना। अग्निहोत्र, अतिथि यज्ञ व मनुष्य सम्बन्धी व्यवहारों को यथायोग्य करना ही है, परन्तु स्वाध्याय प्रवचन का परित्याग नहीं करना। सन्तानोत्पत्ति, वीर्यरक्षण व सन्तान का पालन आदि कार्य

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
आवश्यक हैं, परन्तु इनके साथ पढ़ना-पढ़ाना भी उतना ही आवश्यक है। 'स्नानादि से पवित्रता (शौच) पुरुषार्थ करते हुए हानि-लाभ में हर्ष व शोक न करना (सन्तोष) तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्रणिधान' रूप नियमों का पालन करते हुए, 'अहिंसा (वैर त्याग) सत्य, अस्ते (चोरी का त्याग) ब्रह्मचर्य व अपरिग्रह (अत्यन्तलोलुपता छोड़ सत्त्वाभिमान रहित होना) पंचयमों का सेवन सदा करना चाहिये।

अत्यन्त कामातुरता व निष्कामता किसी के लिए भी उचित नहीं। कामना के अभाव में वेदज्ञान में व वेदाविहित कर्मों में भी तो प्रवृत्ति न होगी। स्वाध्याय, व्रत होम, वेदविहित कर्म उपासना व ज्ञान, पक्षेष्टि, सुसन्तानोत्पत्ति, तंचमहायज्ञों व अन्य यज्ञों के सेवन से यह शरीर परमेश्वर की भक्ति का आधार रूप-'ब्राह्म' शरीर बना लिया जाता है। इन उत्तम कर्मों की कामना करनी ही चाहिये।

साथ ही, संसार के इन अपनी ओर खैंचने वाले विषयों में विचरती हुई इन्द्रियों के निग्रह में सब प्रकार से प्रयत्न कर। मनुष्य इन्द्रियों को अपने वश में करता है, तभी सिद्धि प्राप्त होती है। अजितेन्द्रिय पुरुष के 'वेद, त्याग, यज्ञ नियम और तप तथा अन्य अच्छे काम कभी सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

प्रतिदिन वेद के पढ़ने में, स्वाध्याय में तथा होममंत्रों में अनध्याय विषयक अनुरोध नहीं हैं। जैसे श्वास प्रश्वास सदा चलते हैं, इसी प्रकार नित्य-कर्म प्रतिदिन करने ही चाहियें। अनध्याय के दिन किये हुए अग्निहोत्र आदि उत्तम कर्म पुण्य रूप होते हैं।

घरों में जब अभिवादनशीलता व वृद्धों की सेवा होती है, तो वहाँ 'आयु विद्या यश व बल की वृद्धि होती है। वैर बुद्धि को छोड़ कर कल्याण के मार्ग का उपदेश करना चाहिये। इस कार्य में मधुर व सुशीलतायुक्त वाणी ही बोलनी चाहिये। वाणी और मन का शुद्ध होना अत्यन्त आवश्यक है।

ब्राह्मण को प्रतिष्ठा से विष के तुल्य सदा डरना चाहिये और अपमान की इच्छा अमृत के समान सदा करनी चाहिये।

ब्रह्मचारी व ब्रह्मचारिणी को गुरु के समीप रहकर उल्लिखित प्रकार से मन को परिष्कृत करके वेदार्थ ज्ञान रूप उत्तम तप को बढ़ाते जाना चाहिये।

ब्रह्मचारी के व्रतः—(१) ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी 'मद्य, मांस, माला, रस, स्त्री-पुरुष संग, खटाई तथा प्राणियों की हिंसा को छोड़ दें

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
(**वर्जयेन्मधु मांसं च गंन्धं माल्यं रसान् स्त्रिय:, शुक्तानि यानि सर्वानि प्राणिनाञ्चैव हिंसनम्**)। तेल मालिश, आंखों में अंञ्जन, जूते व छत्र का धारण, काम क्रोध, लोभ तथा नाचना गाना व बजाना, इनका भी परित्याग करें (**अभ्यंगमञ्जन चाक्षयोरूपानच्छत्र धारणम्(२)काम क्रोध च लोभं च नर्तनं गीतवादनम्**) यूत जनवाद (जिस किसी की कथा) निद्रा तथा मिथ्याभाषण, स्त्रियों का दर्शन व आश्रय और दूसरों की हानि आदि कुकर्मों को सदा छोड़ देवें। ब्रह्मचारी सर्वत्र एकाकी सोवे, वीर्यस्खलित कभी न करे। जो कामना से वीर्यस्खलित कर दें तो जानों कि अपने ब्रह्मचर्य व्रत का नाश कर दिया।

आचर्य का (शिष्य) को उपदेश:—आचार्य अपने शिष्य और शिष्याओं वेद पढ़ने के पश्चात् समावर्तन के समय उपदेश देता है कि अब संसार में जाने पर प्रलोभनों में फंस कर झूठ न बोलना (**सत्यंवद**) धर्माचरण ही करना (**धर्मंचर**) स्वाध्याय में प्रमाद न करना (**स्वाध्यायन्मा प्रमदः**) पूर्ण ब्रह्मचर्य से समस्त विद्याओं को ग्रहणऔर आचार्य के लिये प्रियधन देकर विवाह करके सन्तानोत्पत्ति कर (**आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तु माव्यवच्छेत्सी:**) प्रमाद से सत्य को कभी मत छोड़ (**सत्यान्न प्रमदितव्यम्**) प्रमाद से धर्म का त्याग मत कर **धर्मान्न प्रमदितव्यम्** प्रमाद से अरोग्य को मत छोड़ (**कुशलान्न प्रमदितव्यम**) प्रमाद से उत्तम ऐश्चर्य की वृद्धि को मत छोड़ (**भूत्यैन प्रमदितव्यम**) प्रमाद से पढ़ने और पढ़ाने को कभी मत छोड़ (**देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्**) विद्वानों माता-पिता आचार्य आदि की सेवा में प्रमाद मत कर (**देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितयम्**) माता पिता आचार्य अतिथि में देवबुद्धि करते हुए उनकी सेवा कर (**मातृदेवो भव पितृदेवो भव आचार्यं देवौ, अतिथिदेवोभव**) अनिन्दित कर्मों का ही सेवन करना मिथ्याभाषणादि कर्मों का नहीं) (**यान्यस्माकं सुचरितानि तानि सेवितव्यानि इतरणि**) हमारे भी जो सुचरित हों उन्हीं का तूने ग्रहण करना दूसरों का नहीं जो कोई हमारे मध्य में उत्तम विद्वान् धर्मात्मा ब्राह्मण हैं, उन्हीं के समीप बैठ और उन्हीं का विश्वास किया कर (**ये के चास्मच्छ्रेयांसो ब्राह्मणस्तेषां त्वयासनेन यश्चासितव्यम्**) श्रद्धा से देना, अश्रद्धा से देना, शोभा से देना, लज्जा से देना, भय से देना और प्रतिज्ञा से भी देना चाहिए (**श्रद्धया देयम्, अश्रद्धया देयम्, श्रिया दिया दे भिया देयं, संविदा देयम्**)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
जब कभी तुमको कर्म व शील के विषय में किसी प्रकार का संशय उत्पन्न हो तो जो वे विचारशील योगी व अयोगी भी (करुणा वाले) धर्मात्मा ज्ञानी पुरुष हों जैसे वे धर्म मार्ग में वर्तें वैसे तू भी वर्तना (ये तत्र ब्राह्मणाः सम्मर्शिनो युक्ता अयुक्ता अलूक्षा धर्मकामाः स्युः यथा ते तत्र वर्तेरन् तथा तत्र वर्तेथाः) यही हमारा आदेश है, यही वेद की शिक्षा है (एष आदेशः, एष उपदेशः एषा वेदोपनिषत्) यही शिक्षा है (एतत् अनुशासनम्) इसी प्रकार वर्तना। (एवं उपासितव्यम्) और ऐसा ही वर्तना (एवमु चैतदुपास्यम्)।

शिष्टाचार :—

आचार ही परम धर्म है—इसका श्रुति में व स्मृति में प्रतिपादन हुआ है इसलिए प्रशस्त मन वाले ज्ञानी को आचार से वियुक्त कभी न होना चाहिए (आचार परमोधर्मः श्रुत्युक्तः स्मार्त एवच, तस्मादस्मिन्सदा युक्तो नित्यं स्यादात्मवान् द्विजः)। आचार से विच्युत विप्र वेदफल को नहीं प्राप्त करता। आचारयुक्त होने पर ही ज्ञान के सम्पूर्ण फल को प्राप्त करता है (आचाराद् विच्युतो विप्रो न वेदफलमश्नुते आचारेण तु संयुक्ते सम्पूर्णफलभाग् भवेत्)

धर्म :—

जो पक्षपातरहित व न्याय का ग्रहण और असत्य का सर्वथा परित्याग रूप आचार है, उसी का नाम धर्म और इससे जो विपरीत जो पक्षापातसहित अन्याय चरण सत्य का त्याग और असत्य का ग्रहण रूप कर्म है, उसी को अधर्म कहते हैं। जो पुरुष सुवर्णादि रत्न (धन) व स्त्री सेवनादि (काम) में नहीं फँसते, उन्हीं को धर्म का ज्ञान प्राप्त होता है। इस धर्माधर्म का परम प्रमाण श्रुति (वेद) ही है।

ज्ञान :—

ज्ञान की परमावश्यकता राजा इतर क्षत्रिय वैश्य और उत्तम शूद्र जनों को भी विद्या का अभ्यास अवश्य करावें। केवल ब्राह्मण ही विद्याभ्यास करें और क्षत्रियादि न करें तो विद्याधर्म राज्य और धनादि की वृद्धि कभी नहीं हो सकती। जब क्षत्रियादि विद्वान् होते हैं, तब ब्राह्मण भी अधिक विद्याभ्यास और धर्मपथ में चलते हैं और विद्वान् क्षत्रियों के सामने पाखण्ड भी नहीं कर सकते। जब क्षत्रियादि अविद्वान् होते हैं तो वे वैसा ही करते कराते हैं। जब सब वर्णों में विद्या सुशिक्षा होती है, तब कोई भी पाखण्ड रूप अधर्मयुक्त

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
मिथ्या व्यवहार को नहीं चला सकता। इस ज्ञान के प्रसार के लिए जो-जो पढ़ना-पढ़ाना हो वह-वह अच्छे प्रकार से परीक्षा करके होना योग्य है। परीक्षित ग्रन्थों के पढ़ने से ही सत्य के बोध का होना सम्भव है।

पठन-पाठन विधि :—

अक्षरों के ठीक स्थान से उच्चारण प्रारम्भ करके व्याकरण को पढ़ावें, तीन वर्ष में पूर्ण वैयाकरण होकर वैदिक और लौकिक शब्दों का व्याकरण से बोध करके पुनः अन्य शास्त्रों को शीघ्र सहज में पढ़ पढ़ा सकते हैं। अष्टाध्यायी व महाभाष्य आदि ऋषिकृत ग्रन्थों से जितना बोध तीन वर्ष में होता है, उतना बोध सारस्वत चन्द्रिका कौमुदी आदि के पढ़ने से पचास वर्षों में भी नहीं हो सकता। महर्षि लोगों का आशय यथा सम्भव सुगम व जिसके पढ़ने में समय थोड़ा लगे इस प्रकार का होता है और क्षुद्राशय लोगों की मनसा ऐसी होती है कि जहाँ तक बने वहाँ तक कठिन रचना करनी जिसको बड़े परिश्रम से पढ़ अल्प लाभ उठा सकें। जैसे पहाड़ को खोदना कौड़ी का लाभ होना। और आर्य ग्रन्थों का पढ़ना ऐसा है कि जैसा एक गोता लगाना बहुमूल्य मोतियों का पाना।

व्याकरण के बाद 'निघण्टु' और 'निरुक्त' (यास्क मुनि कृत) ६ व ८ महीने में सार्थक पढ़े। अब पिंगलाचार्यकृत छन्दोग्रन्थ चार मास में पढ़ के श्लोक बनाने की रीति सीखें। अब मनुस्मृति, वाल्मीकीय रामायण, व महाभारतान्तर्गत विदुर नीति आदि अच्छे-अच्छे प्रकरण पढ़ें, जिनसे दुष्टव्यसन दूर हों और उत्तमता, सभ्यता प्राप्त हो। इन ग्रन्थों को एक वर्ष में पढ़ लें। अब ऋषिकृत 'व्याख्या सहित' न्याय वैशेषिक, सांख्य योग, मीमांसा वेदान्त' इन छः दर्शनों को पढ़ें। वेदान्त से पहले 'ईश केन कठ' आदि दश उपनिषदों को भी दो वर्ष के भीतर पढ़ लें। अब ६ वर्षों में चारों ब्राह्मणों सहित चारों वेदों का पढ़ना योग्य है। बिना अर्थ के पढ़ना तो भार उठाना मात्र है। विद्या विद्वान् के लिए ही अपने स्वरूप का प्रकाश करती है, अविद्वानों के लिए नहीं। सो जो कुछ पढ़ना पढ़ाना सो वह अर्थज्ञान सहित पढ़ना चाहिए

इस प्रकार वेद पढ़ कर 'चरक' सुश्रुत' आदि ऋषिप्रणीत वैद्यक शास्त्रों से आयुर्वेद का अध्ययन चार वर्ष में पढ़ें। जिन्होंने शासन कार्य में जाना हो वे धनुर्वेद अर्थात् राजविद्या को दो वर्ष में पढ़ें। अब गान्धर्ववेद का क्रम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आता है-गानविद्या का। इसके लिए नारद संहिता आदि आर्ष ग्रन्थ ही पठनीय है। व्यर्थ आलाप कभी न करें। अब 'अर्थवेद' जिसे शिल्प विद्या कहते हैं, उसका अध्ययन करें। दो वर्षों में ज्योतिष शास्त्र (गणित ज्योतिष) को सूर्य सिद्धान्त आदि ग्रन्थों से सीखें। फलित ज्योतिष के ग्रन्थों को पढ़ना व्यर्थ है।

जितनी विद्या इस रीति से वीस या इक्कीस वर्षों में हो सकती है उतनी अन्य प्रकार से शत वर्ष में भी नहीं हो सकती। ऋषिकृत ग्रन्थों में भी जो वेद विरुद्ध प्रतीत हो उसे छोड़ देना। वेद का प्रमाण "वेद" से ही होता है। ब्राह्मणादि सब ग्रन्थ परतः प्रमाण हैं। सब तन्त्र ग्रन्थ मिथ्या ग्रन्थ हैं। इन में थोड़ा सत्य है, परन्तु इसके साथ बहुत असत्य भी है, सो ये उसी प्रकार त्याज्य हैं जैसे कि विष में सम्पृक्त अत्युन्तम अन्न भी त्याज्य है। इनमें जो सत्य है वह वेदादि सत्य शास्त्रों का है और जो मिथ्या है, वह उनके घर का है। सो इन्हें छोड़ ही देना ठीक है। सब को वेद ही मान्य होने चाहियें। 'हमारा मत वेद' है ऐसा ही मानकर सब मनुष्यों को विशेष आर्यों को एकमत होकर रहना चाहिये। 'इतिहास, पुराण, कल्प, गाथा, नाराशंसी' ये पाँचों ब्राह्मण ग्रन्थों के ही अंश हैं। श्रीमद्भागवत आदि पुराणों का ग्रहण करना ठीक नहीं।

विद्या के मार्ग में विघ्न :—

जो विद्या पढ़ने पढ़ाने के विघ्न हैं उनको छोड़ देवें। जैसे—

१. कुसंग।

२. मद्य सेवनादि दुष्टव्यसन।

३. बाल-विवाह।

४. अतिभोजन व अतिजागरण।

५. ब्रह्मचर्य के महत्व को न समझना।

६. मूर्त्ति पूजा आदि में व्यर्थ समय को खोना।

७. लोभ से धनादि में प्रवृत्त होकर विद्या में प्रीति न रखना।

८. इधर-उधर व्यर्थ घूमते रहना।

सम्प्रदायी, स्वार्थी ब्राह्मण भी दूसरों को विद्या सत्संग से हटा उनको अपने जाल में फंसाते हैं। वे सोचते हैं कि जो क्षत्रियादि वर्ण पढ़ कर विद्वान् हो जायेंगे तो हमारे पाखण्ड जाल से छूट हमारा अपमान करेंगे। सो राजा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
और प्रजा इन विघ्नों को दूर करके अपने लड़के और लड़कियों को विद्वान् करने के लिए तन मन धन से प्रयत्न किया करें।

स्त्री का भी वेदाधिकार :—

'स्त्री शूद्रौ नाधीयाताम् इति श्रुतेः' यह वाक्य कपोल कल्पित है। यजुर्वेद २६:२ में कहा है कि जैसे मैं (प्रभु) सब मनुष्यों के लिए इस कल्याणी वेद-वाणी का उपदेश करता हूँ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र अपने भृत्यों, व अति शूद्रादि के लिए भी वेदों का प्रकाश किया है (**यथेमां वाचं कल्याणी-मावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्यभ्याँ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय**)। जैसे परमात्मा ने पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र, सूर्य और अन्नादि पदार्थ सब के लिए बनाये हैं, वैसे ही वेद भी सबके लिए प्रकाशित किये हैं। 'ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्' इस अथर्व मंत्र में कहा है कि 'ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पढ़ पूर्ण विद्या व उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती होकर के पूर्ण युवास्था में अपने सदृश पूर्ण युवावस्थायुक्त पुरुष को प्राप्त होवें।' श्रौत सूत्रों का '**इमं मन्त्रं पत्नी पठेत्**' यह निर्देश तो स्पष्ट है कि स्त्री इस मन्त्र को पढ़े। शतपथ में लिखा है कि गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़ कर पूर्ण विदुषी हुई थीं। अनपढ़ स्त्री व पढ़े लिखे पुरुष का साथ भी नहीं। कैकेयी धनुर्वेद को भी जानती थी, तभी तो दशरथ के साथ युद्ध में जा सकी। सुशिक्षित स्त्री ही घर को सुन्दर बना सकती है। वैद्यकविद्या निपुण स्त्री घर को भी स्वर्ग बनायेंगी। शिल्पविद्या निपुण स्त्री घर को शोभा वाला बना-येगी। सो स्त्रियों को वेदादि शास्त्र पढ़ने ही हैं। एवं वही देश सौभाग्यशाली है जिसमें यथायोग्य ब्रह्मचर्य विद्या और वेदोक्त धर्म का प्रचार होता है।

विद्या पढ़ के ये युवक व युवती समावृत्त होकर गृहस्थ बनते हैं। अगले समुल्लास में इसी गृहाश्रम का प्रतिपादन होगा।

महर्षि ने कहा था—

जब सब वर्णों में विद्या, सुशिक्षा होती है, तब कोई भी पाखण्ड रूप अधर्मयुक्त मिथ्या, व्यवहार को नहीं चला सकता।

सब वर्णों के स्त्री पुरुषों में विद्या और धर्म का प्रचार अवश्य होना चाहिए।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चार

चतुर्थ समुल्लास के
आधार पर

गृहस्थ धर्म

सामान्य नियम :—चारों वेदों को, दो वेदों को व एक वेद को यथाक्रम अध्ययन करके, जिसका ब्रह्मचर्य खण्डित न हुआ हो वह पुरुष व स्त्री गृहाश्रम में प्रवेश करें (**वेदानधीत्य वेदौवा वेदं वापि यथाक्रमम् अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत**) ऐसे लक्षणयुक्त विद्यार्थी को कन्या के पिता गोदान से सत्कृत करें (**अर्हयेत् प्रथमं गवा**) अब वह स्नातक अपने वर्णानुकुल सुन्दर लक्षणयुक्त कन्या से विवाह करें (**उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्**) यह ध्यान रखे कि कन्या माता के कुल की ६ पीढ़ियों में न हो और पिता के गोत्र की न हो, उस कन्या से विवाह करना उचित है (**असपिण्डाच या मातुः असगोत्रा च या पितुः**)। दूरस्थ में जितना प्रीति का संभव है, उतनी समीपस्थ में नहीं। इस विवाह में सब से बड़ा दोष यह है कि बाल्यावस्था के आचरण जानते होते हैं, सो आवश्यक प्रेम का संभव नहीं। (२) जैसे पानी में पानी मिलने से विलक्षण गुण नहीं होता वैसे एक गोत्र पितृव मातृ कुल में विवाह होने से धातुओं के अदल-बदल नहीं होने से उन्नति नहीं होती। (३) निकट सम्बन्ध करने में एक दूसरे के निकट होने से सुख दुःख का भान और विरोध भी संभव है, दूसर देशस्थों में नहीं। (४)दूर सम्बन्धों में दूर देश के पदार्थों की प्राप्ति भी सहायता से हो सकती है। यास्क 'दुहिता' (Daughter लड़की) शब्द की व्युत्पत्ति ही करते हैं 'दूरेहिता'। (५) समीप होने पर जब २ कन्या पितृकुल में आवेगी तब २ इसको कुछ न कुछ देना ही होगा। इससे कन्या के पितृकुल में दारिद्रय होने का संभव है। यास्क दुहिता का अर्थ करते हैं 'दोग्धृ'

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वा जो पितृकुल को दोहती ही रहती हैं। (५) समीप होने पर कन्या को पितृ कुल के सहाय का घमण्ड होगा और जब कुछ भी दोनों में वैमनस्य होगा तब स्त्री झट ही पिता के कुल न चली जायेगी और एक दूसरे की निन्दा अधिक होगी।

इस कारण समीप देश में विवाह करना अच्छा नहीं। नांही पिता के एक गोत्र और माता की छः पीढ़ी में यह विवाह होना चाहिये।

विवाह किन घरों में नहीं :—जो कुल सत्क्रिया से हीन, सत्पुरुषों से रहित वेदाध्ययन (ज्ञान) से विमुख, शरीर पर बड़े २ लोम अथवा बवासीर, क्षय, दमा (खाँसी) मिरगी श्वेतकुष्ठ और गलित कुष्ठयुक्त हों उन कुलों की कन्या व वर के साथ विवाह न होना चाहिये क्योंकि ये सब दुर्गुण और रोग विवाह करने वाले कुल में प्रविष्ट हो जाते हैं (**हीनक्रियं निष्पुरुषं निश्छन्दो रोमशार्शसम् । क्षय्यामयाव्यपस्मारि श्वितृकुष्ठिकुलानिच**) इसी प्रकार **नोद्वहेत् कापिलां कन्यां नाऽधिकांगी न रोगिणीम् नालोमिकां नातिलोमां न च वा वाचाटान्न पिंगलाम्**) न पीलेवर्ण वाली (निर्बल), न पुरुष से लम्बी, न रोगयुक्ता, न लोम रहित न बहुत लोम वाली, न बकवाद करने वाली और न भूरे नेत्र वाली कन्या से विवाह करें। तारे वृक्षनदी अन्त्य (चाण्डाल) पर्वत पक्षी सांप प्रेष्य (दास) भीषण नाम वाली कन्याओं से भी विवाह न करें। क्योंकि ये नाम कुल के अज्ञान की सूचना देते हैं। (नर्क्षवृक्षनदी नाम्नीं नान्त्यपर्वत नामिकाम् न पक्ष्यहिप्रेष्य नाम्नीं न च भीषणनामिकाम्)। उसी स्त्री से विवाह करे जिसके अंग ठीक हों (अव्यंगांगीम्) सौम्य नाम वाली हो, हंस व हथिनी के समान चाल वाली हो (सौम्यनाम्नीं हंसवारणगामिनीम्) सूक्ष्म लोम केश व दन्तयुक्त हो (तनुलोमकेशदशनाम्) तथा कोमल अँगों वाली हो (मृद्वंगीम्)।

विवाह का समय :—सोलह वर्ष से पूर्व युवती का और पचीस से पूर्व युवक का विवाह होना ठीक नहीं। जिस देश में बाल्यवस्था में ही अयोग्यों का विवाह होता है, वह दु:ख में डुब जाता है। '**अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी, दशवर्षा भवेत् कन्या तत ऊर्ध्वं रजस्वला**' आदि श्लोक पराशर ऋषि के नाम पर घड़ लिये गये हैं। ८ वें ९ वें व १० वें वर्ष में विवाह का तो कुछ फल नहीं है क्योंकि १६ वें वर्ष के पश्चात् ही युवती का गर्भाशय पूरा और शरीर भी बलयुक्त होने से सन्तान उत्तम होते हैं। पुरुष भी पच्चीसवें वर्ष में पहुंचकर ही गर्भाधान के योग्य होता है। यही बात सुश्रुत में इस प्रकार कही गयी है '**ऊनन्षोडशवर्णायाम प्राप्त:पंचविंशतिम् । यद्याधन्ते पुमान्**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते' जातोवा न **चिरञ्जीवेद् जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः** सोलह वर्ष से न्यून आयु वाली स्त्री में पच्चीस वर्ष से न्यून आयु वाला पुरुष जो गर्भस्थापित करे, तो वह कुक्षिस्थ हुआ गर्भ विपत्ति को प्राप्त होता है। उत्पन्न होकर चिरकाल तक नहीं जीता, जी भी जाये तो दुर्बल रहता है। सो बाल्यावस्था में विवाह कभी उत्तम नहीं। मनु के अनुसार **'त्रीणि वर्षाण्यु दीक्षेत कुमार्युतुमती सती ऊर्ध्वं तु कालादेतस्माद् विन्देत सदृशं पतिम्'** कन्या रजस्वला हुए पीछे तीन वर्ष पर्यन्त पति का खोज करके अपने तुल्य पति को प्राप्त होवे। ऋतुमती होने पर गुणहीन के साथ विवाह कभी नहीं करना चाहिये।

विवाह किस के आधीन :—

माता पिता, लड़का लड़की की प्रसन्नता के बिना उनका विवाह कभी न करें, क्योंकि प्रसन्नता से विवाह होने में विरोध बहुत कम होता है और सन्तान उत्तम होते हैं। अप्रसन्नता के विवाह में नित्य क्लेश ही रहता है। जिस कुल में स्त्री से पुरुष और पुरुष से स्त्री सदा प्रसन्न रहती है उसी कुल में लक्ष्मी व कीर्ति निवास करती है **'सन्तुष्टोभार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैवच यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्'**। जब तक इसी प्रकार आर्य लोग ब्रह्मचर्य से विद्या पढ़ ही के स्वयंवर विवाह करते थे तब तक इस देश की सदा उन्नति होती थी। जब से बाल्यावस्था में और माता पिता की अधीनता में विवाह होने लगा, तब से क्रमशः आर्यावर्त देश की हानि होती चली आयी है। वर्णव्यवस्था वर्ण गुण कर्मानुसार होती हैं, न कि जन्म ़ध्याय जप होम आदि के द्वारा यह शरीर ब्राह्मण का किया जाता है। जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होकर नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिये। जो पूर्णव्यापक परमात्मा की सृष्टि में मुख के सदृश सब में मुख्य उत्तम हो वह 'ब्राह्मण' (**ब्राह्मणोऽस्य मुख मासीत्**) क्षत्रिय राष्ट्र शरीर भुजाओं के समान हैं। (**बाहू राजन्यः कृतः**) इनका कार्य भुजाओं के समान रक्षा करना है। वैश्य मध्य भाग के समान सब धन को पैदा करने वाले तथा शूद्र पाओं के समान श्रम करने वाले हैं (**उरू तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यांशूद्रोऽजायत**) चारों वर्णों में जिस जिस वर्ण के सदृश जो-जो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पुरुष व स्त्री हों वह उसी-उसी वर्ण में गिने जावें (**शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चैति शूद्रताम्**) आपस्तम्ब लिखते हैं कि (**धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ, अधर्मचर्यया पूर्वं वर्णो जघन्यं २ वर्णमापद्यते जाति परिवृत्तौ**' धर्माचरण से निकृष्ट वर्ण अपने से उत्तम वर्ण को प्राप्त होता है और अधर्मा चरण से उत्तम वर्ण वाला मनुष्य अपने से नीचे २ वाले वर्ण को प्राप्त होता है।

यह गुण कर्मों से वर्णों की व्यवस्था कन्याओं की सोलहवें वर्ष और पुरुषों की पच्चीसवें वर्ष की परीक्षा में नियत करनी चाहिये। और इसी क्रम से अर्थात् ब्राह्मण वर्ण का ब्राह्मणी, क्षत्रिय वर्ण का क्षत्रिया, वैश्य वर्ण का वैश्या, और शूद्र वर्ण का शूद्रा के साथ विवाह होना चाहिये, तभी अपने-अपने वर्णों के कर्म और परस्पर प्रीति भी यथायोग्य रहेगी।

वर्णों के कर्त्तव्य कर्म और गुण—ब्राह्मण के पढ़ना पढ़ाना, यज्ञ करना कराना, दान देना और लेना ये कर्म हैं (**अध्यापनमध्ययनं यजनं याजनं तथा, दान प्रतिगृहश्चैव ब्राह्मणानामकल्पयत्**) 'शम, दम, तप, शौच (पवित्रता) सहनशीलता सरलता ज्ञान विज्ञान व आस्तिक्य' ये गुण ब्राह्मण में अवश्य होने चाहियें। (**क्षमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्**)। क्षत्रिय वर्ण के कर्म व गुण ये हैं:—राजाओं का रक्षण, दान, यज्ञ, अध्ययन विषयों में न फँसना (**प्रजानां रक्षणं दानभिज्याध्ययन मेव च, विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रिस्य समासतः**)। शौर्य, तेज, धृति, दाक्ष्य (चतुरता) युद्ध में पीठ न दिखाना, दान व ईश्वरभाव (शासन वृत्ति) **शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलाययनम् दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्**)। वैश्य के गुण कर्म ये हैं कि गवादि पशुओं का रक्षण, दान, यज्ञ, अध्ययन, व्यापार, व्याज पर रुपया देना, तथा कृषि। (**पशूनां रक्षणं दानभिज्याध्ययनमेव च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिमेव च**)। शूद्र को योग्य है कि असूया (ईर्ष्या) को छोड़ के ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्यों की सेवा यथावत् करना (**एकमेव तु शूद्रस्य प्रभु कर्म समादिशत्। एतेषामेव वर्णानां शुश्रूषामन सूयया**)। वर्णों को अपने-अपने भू प्रवृत्त करना राजा आदि सज्जनों का काम है।

आठ प्रकार का विवाह

'**ब्राह्मो दैवस्तथैवार्षः प्राजापत्यस्तथासुरः गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चा-**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ष्टमोऽधमः—१. वर कन्या दोनों यथावत् ब्रह्मचर्य से पूर्ण विद्वान् धार्मिक और सुशील हों। उनका परस्पर प्रसन्नता से विवाह होना 'ब्राह्म' विवाह है।

२. विस्तृत यज्ञ करने में ऋत्विक् कर्म करते हुए जामाता को अलंकार-युक्त कन्या का देना 'दैव'। वर से कुछ लेके विवाह होना 'आर्ष' दोनों का विवाह धर्म की वृद्धि के अर्थ होना 'प्राजापत्य'। वर और कन्या को कुछ देके विवाह होना 'आसुर'। अनियम असमय किसी कारण से वर कन्या का इच्छा-पूर्वक परस्पर संयोग होना 'गान्धर्व'। लड़ाई करके बलात्कार से कन्या का ग्रहण करना 'राक्षस'। शयन व मद्यादि पी हुई पागल कन्या से बलात्कार संयोग करना 'पैशाच'। इन सब विवाहों में ब्रह्म विवाह 'सर्वोत्कृष्ट' दैत्य और प्राजापत्य 'मध्यम' आर्ष, असुर गान्धर्व 'निकृष्ट' राक्षस 'अधम' और पैशाच 'महाभ्रष्ट' है।

विवाह में नियम

विवाह वर और कन्या के परस्पर निश्चय कर लेने पर ही हो। कन्या के माता-पिता के घर में विवाह होना योग्य है। गर्भस्थिति का निश्चय हो जाय तब से एक वर्ष पर्यन्त स्त्री पुरुष का समागम कभी न होना चाहिए। ऐसा होने से सन्तान उत्तम होता है। अन्यथा वीर्य व्यर्थ जाता, दोनों की आयु घट जाती और अनेक प्रकार के रोग होते हैं। स्त्री इस समय भोजन छादन इस प्रकार करे कि गर्भ में बालक शरीर अत्युत्तम रूप, लावण्य, पुष्टि बल पराक्रम-युक्त होकर दशम मास में जन्म होवे।

जो पति अपनी ही स्त्री से प्रसन्न, निषिद्ध रात्रियों में स्त्री से पृथक् रहता और ऋतुगामी होता है वह गृहस्थ में भी ब्रह्मचारी के सदृश है।

गृहस्थ जीवन में स्त्री का महत्वपूर्ण स्थान :—जिस कुल में भार्या से भर्ता, और पति से पत्नी अच्छे प्रकार प्रसन्न रहती हैं उसी कुल में सब सौभाग्य और ऐश्वर्य निवास करते हैं। जहाँ कलह होता है वहाँ दौर्भाग्य और दरिद्रता स्थिर होती है। **सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम्)** जो स्त्री पति से प्रीति और प्रसन्न नहीं रहती तो पति के अप्रसन्न होने से काम उत्पन्न नहीं होता (**यदि हि स्त्री न रोचेत पुमांसं न प्रमोदयेत् अप्रमोदात् पुनः पुंसः प्रजनं न प्रवर्तते**)

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जिस स्त्री की प्रसन्नता में सब कुल प्रसन्न होता है उसकी अप्रसन्नता में सब अप्रसन्न अर्थात् दुःखदायक हो जाता है। (**स्त्रियां तु रोचमानायां सर्वं तद्रोचते कुलं तस्यां त्वरोचमानायां सर्वमेव न रोचते**) पिता भाई पति और देवर को योग्य है कि इनको सत्कारपूर्वक भूषणादि से प्रसन्न रखें। जिनको बहुत कल्याण की इच्छा हो वे ऐसे करें (**पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता पतिभिर्देवरैस्तथा। पूज्या भूषियितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः**) जिस घर में स्त्रियों का सत्कार होता है वहां दिव्य गुणों का विकास होता है। जहाँ इनका सत्कार होता, वहां सब क्रिया निष्फल हो जाती है। (**यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्तें तत्र देवताः यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः**) जिस घर व कुल में स्त्री लोग शोकातुर होकर दुःखपाती वह कुल शीघ्र नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है और जिस घर व कुल में स्त्री लोग आनन्द से उत्साह और प्रसन्नता में भरी रहती है, वह कुल सर्वदा बढ़ता रहता है (**शोचन्ति जातयो यत्र विनश्यत्याशु तत कुलम् न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धतें तद्धि सर्वदा**)इसलिए ऐश्वर्य की कामना करने हारे मनुष्यों को योग्य है कि सत्कार व उत्सव के समय में भूषण वस्त्र और भोजनादि से स्त्रियों का नित्यप्रति सत्कार करें।

स्त्री का कर्त्तव्य :—स्त्री को योग्य है कि अति प्रसन्नता से घर के कामों में चतुराई युक्त सब पदार्थों के उत्तम संस्कार तथा घर की शुद्धि रखे और व्यय में अत्यन्त उदार रहे।

सत्य—सदा प्रिय सत्य दूसरे का हितकारक बोले, अप्रिय सत्य अर्थात् काणे को काणा न बोले अनृत अर्थात् झूठ दूसरे को प्रसन्न करने के अर्थ न बोले। (**सत्यं ब्रूयात, प्रियं ब्रूयात न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः**) **भद्रं भद्रमिति ब्रूयाद्भद्रमित्येव वा वदेत्** सदा भद्र अर्थात् सबके हितकारी वचन बोला करें। शुष्क वैर व विवाद किसी के साथ न करे (**शुष्क वैरं विवादं च न कुर्यात् केनचित्** सह)। सत्पुरुष परोक्ष में दूसरे के गुण ही सदा कहा करते हैं। मनुष्य को चाहिये कि कभी किसी की निन्दा न करें।

ज्ञान—गृहस्थ अपने अवकाश के समय में जो बुद्धि धन और हित की शीघ्र वृद्धि करने हारे शास्त्र और वेद हैं उनको नित्य सुनें और सुनावें (**बुद्धि**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वृद्धि करण्याशु धन्यानि च हितानि च नित्यं शास्त्राणयवेक्षेत निगमांश्चैव वैदिकान्) जैसे-जैसे मनुष्य शास्त्रों को यथावत् जानता है, वैसे-वैसे उस विद्या का विज्ञान बढ़ता जाता और उसी में रुचि बढ़ती रहती है **(यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समाधिगच्छति तथा-तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते)** ।

पंचयज्ञ—'ब्रह्मयज्ञ, देवयज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ तथा भूतयज्ञ' इन पांच यज्ञों को अवश्य किया करे। अध्यापन ही ब्रह्मयज्ञ है। इसे ऋषियज्ञ भी कहते हैं, स्वाध्याय के द्वारा ही ऋषियों का तर्पण होता है (**'अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः स्वाध्यायेनार्चयेदृषीन्'**)। अग्निहोत्र देवयज्ञ है, अग्निहोत्र द्वारा वायु आदि देवों की शुद्धि होती है (**'होमोदैवः'। 'होमैर्देवान् यथाविधि'**)। वृद्ध माता-पिता को आदरपूर्वक भोजनादि से तृप्त करना ही तर्पण व पितृयज्ञ है। वही वस्तुतः श्राद्ध है (**पितृयज्ञश्च तर्पणम्।' 'पितृप् श्राद्धैः**) व्रती विद्वान् अतिथियों की सेवा अतिथियज्ञ है, इसे ही नृयज्ञ कहते हैं। अन्न आदि के द्वारा इनकी सेवा करनी आवश्यक है (**'नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।' 'नृन्अन्नैः'**) बलिवैश्व देव यज्ञ ही भूतयज्ञ है। इन प्राणियों के लिये भी बलि देनी ही चाहिये। (**'बलिर्भौतः'। भूतानि बलिकर्मणा'**)। इनमें अग्निहोत्र से जो प्रातः सायं होम होता है वह हुतद्रव्य प्रातःकाल तक वायुशुद्धि द्वारा सुखकारी होता है। और जो अग्नि में प्रति प्रातः होम किया जाता है वह हुतद्रव्य सायं काल पर्यन्त वायु की शुद्धि द्वारा बल बुद्धि और आरोग्यमूल होता है। (**'सायं २ गृहपतिर्नो अग्निः प्रातः २ सौमनस्य दाता। प्रातः प्रातः गृहपतिर्नो अग्निः सायं २ सौमसस्य दाता'** अथर्व) **बलिवैश्वदेवयज्ञ** के प्रसंग में मनु लिखते हैं कि **'शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्। वायसानां कृमीणां च शनकैर्निवपेद् भुवि'** कुत्ते पापी चाण्डाल पापरोगी को कौवे कृमि अर्थात् चींटी आदि को अन्न देना। तथा जो कुछ पाकशाला में भोजनार्थ सिद्ध हो, उसका हवन करने का प्रयोजन यह है कि पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है, उसका प्रत्युपकार कर देना।

पंच महायज्ञों का फल—ब्रह्मयज्ञ के करने से विद्या, शिक्षा, धर्म, सभ्यता आदि शुभगुणों की वृद्धि। अग्निहोत्र (देवयज्ञ) से वायु वृष्टि जल की शुद्धि होकर वृष्टि द्वारा संसार को सुख प्राप्त होगा। पितृयज्ञ से जब माता-पिता और ज्ञानी महात्माओं की सेवा करेगा, तब उसका ज्ञान बढ़ेगा। उससे

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सत्यासत्य का निर्णय कर, सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करके सुखी रहेगा। दूसरा कृतज्ञता अर्थात् जैसी सेवा माता-पिता और आचार्य ने सन्तान और शिष्यों की की है, उसका बदला देना उचित ही है। बलिवैश्वदेव यज्ञ का फल भी पाकशालास्थ वायु का शुद्ध होना, और जो अज्ञात अदृष्ट जीवों की हत्या होती है, उसका प्रत्युपकार कर देना है। जब तक उत्तम अतिथि जगत् में नहीं होते तब तक उन्नति भी नहीं होती। उनके सत्योपदेश से और सर्वत्र घूमने से पाखण्ड की वृद्धि नहीं होती।

प्रातः जागरण—मनु लिखते हैं कि **'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेत् कायक्लेशांश्च तन्मूलान्वेद ततचार्थमेवच'** रात्रि के चौथे प्रहर में उठ बैठे। आवश्यक कार्य करके धर्म और अर्थ, शरीर के रोगों का निदान और परमात्मा (वेदतावार्थ) का ध्यान करें।

धर्म—यह कभी न भूलें कि **'नाधर्मश्चरितोलोके सद्यः फलति गौरिव। शनरावर्तमानस्तु कर्तमूलानि कृन्तति'** किया हुआ अधर्म निष्फल कभी नहीं होता, परन्तु जिस समय अधर्म करता है उसी समय फल भी नहीं होता। यह निश्चय है कि अधर्माचरण धीरे-धीरे सुख के मूलों को काटता चला जाता है। अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ बढ़ता है, धनादि ऐश्वर्य व प्रतिष्ठा को भी प्राप्त होता है,अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है। किन्तु पश्चात् जड़ कटे वृक्ष की तरह नष्ट हो जाता है (**अधर्मेंधणंतेधावत् ततो भद्राणि पश्यति ततः सपन्ताञ्जयति समूलस्तु विनश्यति**)। स्त्री और पुरुष को चाहिये कि जैसे दीमक बांबी को बनाती है, वैसे सब भूतों को पीड़ा न देकर परजन्म के सुखार्थ धीरे-धीरे धर्म का संचय करे (**धर्मं शनैः संचिनुयाद् वल्मीकमिव पुत्तिकाः परलोकसहायार्थं सर्वभूतान्यपीडयन्**) परलोक में न माता न पिता न पुत्र न स्त्री न जाति सहाय कर सकते हैं, किन्तु एक धर्म ही सहायक होता है (**नामुत्रहि सहायार्थं पिता माता च तिष्ठतः। न पुत्रदारं न ज्ञाति धर्मस्तिष्ठति केवलः**) जब कोई किसी का सम्बन्धी मर जाता है, उसको मिट्टी के ढेले के समान भूमि में छोड़ कर पीठ दे बन्धुवर्ग विमुख होकर चले जाते हैं, एक धर्म ही उसका संगी होता है (**मृतं शरीर मृत्सृज्य काष्ठ लोष्ठसमंक्षितौ, विमुखाबान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति**) उस हेतु से परजन्म में सहायार्थ नित्य धर्म का संचय धीरे-धीरे करता जावे क्योंकि धर्म ही की सहायता से बड़े-बड़े दुस्तर दुःखसागर को जीव तर सकता है (**तस्माद्धर्मं सहायार्थं नित्यं संचिनुयाच्छनैः धर्मेण हि सहायेन तमस्तरति दुस्तरम्**)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म का स्वरूप :—(१) किसी से विवाद न करें(**मातापितृभ्यां यामीभिः भ्रात्रा पुत्रेण भार्यया दुहित्रा दास वर्गेण विवादंन समाचरेत्**)कार्यों को दृढ़ता से करने वाला कोमल स्वभाव, जितेन्द्रिय क्रूराचरण वालों से पृथक् रहने वाला मन को जीत कर दम और दान के द्वारा सुख को प्राप्त हो(**दृढ़कारी मृदुर्दान्तः क्रूराचारैर संवसन् अहिंस्रो दमदानाभ्यां जयेत्स्वर्गं तथाव्रतः**)जो झूठ बोलता और मिथ्याभाषण करता है वह सब चोरी आदि पापों का करने वाला है(**तान्तु याः स्तेनयेद् वाच स सर्वस्तेयकृन्नरः**) दुराचार का परित्याग करें-दुराचार का परिणाम निन्दा व दुःख, व्याधि व अल्पजीवन है (**दुराचरो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः दुःखभागी च सततं व्याधितो ऽल्पायुरेव च**)। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि पराधीन न हो। जो २ पराधीन कर्म हो उस २ का प्रयत्न से त्याग और जो २ स्वाधीन कर्म हो उस २का प्रयत्न के साथ सेवन करें। जो२ स्वाधीनता है वह २ सब सुख यही संक्षेप से सुख दुःख का लक्षण जानना चाहिये। (**यद्यद् परवशं कर्म त्तद्यनाभिन वजयेत् यद्यदात्मवेशं तु स्यात् तत्तत् सेवेत यत्नतः (सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् एतद्विद्यात् समासेन लक्षणं सुखदुःखयो**)।

परस्पर व्यवहार :—जो एक दूसरे के अधीन काम है वह अधीनता से ही करने चाहियें। स्त्री पुरुष का और पुरुष स्त्री का परस्पर प्रियाचरण, अनुकूल रहना विरोध कभी न करना।पुरुष के आज्ञानुकूल घर के काम स्त्री और बाहिर के काम पुरुष के अधीन रहना। जब विवाह होवे तब यही निश्चय जानना कि स्त्री के साथ पुरुष और पुरुष के साथ स्त्री बिक चुकी। अब स्त्री व पुरुष परस्पर प्रसन्नता के बिना कोई भी व्यवहार न करें।

मूढ़ता का त्याग :—संसार में अश्रुत (अपठित) होते हुए घमण्डी होना दरिद्र होते हुए बड़े २ मनोरथ करना तथा बिना कार्य से पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा करना मूढ़ता का लक्षण है। (**अश्रुतश्च समुन्नद्धो, दरिद्रश्च महामनाः अर्थांश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्यते बुधैः**)जो बिना बुलाये किसी के घर में प्रविष्ट हो (अनाहूतः प्रविशति) बिना पूछे सभा में बहुत सा बके (ह्यपृष्टो बहु भाषते) विश्वास के अयोग्य में विश्वास करे (अविश्वस्ते विश्वसिति) वही मूढ़ चेता नराधम है साथ ही 'आलस्य, मद, मोह, चपलता, गपशप, जड़ता, अभिमान और अत्यागशीलता' इन सात दोषों से तो बचना ही चाहिये।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

राष्ट्रोन्नति का उद्देश्य :—'ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र' इन चारों वर्णों को परस्पर प्रीति, उपकार, सज्जनता, सुख दुःख हानि लाभ में ऐकमत्य रहकर राज्य और प्रजा की उन्नति में तन मन धन व्यय करते रहना।

एक आवश्यक बात :—स्त्री व पुरुष का वियोग कभी नहीं होना चाहिये क्योंकि मादक द्रव्यों का पीना, दुष्ट पुरुषों का संग, पतिवियोग' अकेली जहां तहां व्यर्थ पाखण्डी आदि के दर्शन के मिस से फिरती रहना, पराये घर में शयन व वास ये छः स्त्री को दूषित करने वाले दुर्गुण हैं (**पानं दुर्जनसंसर्गः पत्याच विरहोऽटनम् स्वप्नो ऽन्यगेहवासश्च नारी सन्दूषणानि षट्**) सो पति दूर देश में यात्रार्थ (कार्यार्थं) जावे तो स्त्री को भी साथ रखें। इसका प्रयोजन यह है कि बहुत समय तक वियोग न रहना चाहिये।

पुर्नविवाह :—एक समय में बहुत विवाह होने योग्य नहीं। परन्तु समयान्तर में अनेक विवाह हो सकते हैं। जिस स्त्री व पुरुष का पाणिग्रहण मात्र संस्कार हुआ हो और संयोग न हुआ हो अर्थात् अक्षतयोदि स्त्री और अक्षत-वीर्य पुरुष हो उनका अन्य स्त्री पुरुष के साथ पुर्नविवाह होना चाहिये। किन्तु ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्यवर्णों में क्षतयोनि स्त्री और क्षतवीर्य पुरुष का पुन-विवाह न होना चाहिये। यदि सन्तान न हो तो भी कुल की परम्परा रखने के लिये किसी अपने स्वजाति का लड़का गोद में ले लेंगे उससे कुल चलेगा।

ब्रह्मचर्य न रख सकें तो नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लें। अधिक सन्तान उत्पन्न न करें। क्योंकि अधिक करने से सन्तान निर्बल अल्पायु और निर्बुद्धि होते हैं, और स्त्री तथा पुरुष भी निर्बल अल्पायु और रोगी होकर वृद्धावस्था में बहुत से दुःख पाते हैं। नियम से विवाह होने पर स्त्री पुरुष सम्बन्ध व्यभिचार नहीं कहाता, इसी प्रकार नियमपूर्वक नियोग होने से व्यभिचार न कहावेगा।वेश्या के समागम में किसी निश्चित पुरुष कोई न नियम नहीं है, और नियोग में विवाह के समान नियम है। जो नियोग की बात में पाप मानते हों तो विवाह में पाप क्यों नहीं मानते पाप तो नियोग के रोकने में है क्योंकि ईश्वर के सृष्टि क्रमानुकूल स्त्री पुरुष का स्वाभाविक व्यवहार रुक नहीं सकता सिवाय वैराग्यवान् पूर्णविद्वान् योगियों के। जब तक स्त्री पुरुष युवावस्था में है तब तक किसी राज्य व्यवहार जाति व्यवहार से रुकावट होने से गुप्त २ कुकर्म बुरी चाल से होते रहते हैं। इस व्यभिचार और कुकर्म को रोकने का एक यही श्रेष्ठ उपाय है कि युवकों का विवाह और आपत्काल

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में नियोग अवश्य होना चाहिये। इससे व्यभिचार का न्यून होना, प्रेम से उत्तम सन्तान हो कर मनुष्यों की वृद्धि होना संभव है और गर्भहत्या सर्वथा छूट जाती है।

नियोग देवर के साथ होता है। परन्तु देवर शब्द का अर्थ निरुक्त के (**देवरः कस्मात् द्वितीयो वर उच्यते**) अनुसार विधवा के दूसरे पति से है। वह चाहे छोटा भाई व बड़ा भाई हो, अथवा अपने वर्ण व अपने से उत्तम वर्ण वाला हो जिससे नियोग करे उसी का नाम देवर है।

जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि हे सुभगे तू मेरे से दूसरे पति की इच्छा कर (**अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्** ऋ० १०/१० ।)

क्योंकि अब मेरे से सन्तानोत्पति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे। विवाहित स्त्री जो विवाहित पति धर्म के अर्थ परदेश में गया हो तो आठ वर्ष, विद्या और कीर्ति के लिये गया हो तो छः और धनादि कामना के लिये गया हो तो तीन वर्ष बाट देखने के पश्चात् नियोग कर के सन्तानोत्पत्ति करले। जब विवाहित पति आवे, तब नियुक्त पति छूट जावे (**प्रोषितो धर्मकार्यार्थं प्रतीक्ष्योऽष्टौ नरः समाः, विद्यार्थं षड् यशोऽर्थं वा कामार्थं त्रींस्तुवत्सरान्** वैसे ही पुरुष के लिये भी नियम है कि वन्ध्या हो तो आठवें, सन्तान हो कर मर जावे तो दसवें, जब २ सन्तान हो तब २ कन्या ही होवें तो ग्यारहवें वर्ष तक और जो अप्रिय बोलने वाली हो तो सद्यः उस स्त्री को छोड़ के दूसरी स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कर लेवे (**वन्ध्याष्टमेऽधिवेद्याब्दे दशमे तु मृतप्रजा एकादशे स्त्रीजननी सद्यस्त्व प्रियवादिनीये**) क्षेत्रज अर्थात् नियोग से उत्पन्न पुत्र की मृतपिता के दायभागी होते हैं।

गृहस्थ के अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य :—'माता पिता सास श्वसुर' की अत्यन्त शुश्रुषा करें। मित्र और पड़ौसी तथा राजा विद्वान् वैद्य तथा सत्पुरुषों से प्रीति रखें। जो दुष्ट अधर्मी हैं उनसे भी द्रोह छोड़कर उनके सुधारने का यत्न किया करें। जहाँ तक बने वहां तक प्रेम से अपने सन्तानों के विद्वान् और सुशिक्षा करने कराने में धनादि पदार्थों का व्यय करके उनको पूर्ण विद्वान् सुशिक्षयुक्त कर दें।

गृहस्थाश्रम का महत्व :—अपने-अपने कर्तव्य कर्मों में सब आश्रम बड़े हैं। परन्तु जैसे नदी और बड़े-बड़े नद अन्ततः समुद्र में स्थिति को प्राप्त करते

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हैं, इसी प्रकार सब आश्रम गृहस्थ ही के आश्रय से स्थिर रहते हैं, (यथा नदी नदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम् तथैवाश्रमिणः सर्वे गहस्थे यान्ति संस्थितिम्) गृहस्थ ही तीनों अन्य आश्रमों को दान और अन्नादि देकर धारण करता है। इससे गृहस्थ ज्येष्ठाश्रम है (यस्मात्त्रयोऽप्याश्रमिणो दानेनान्ने चान्वहम् गहस्थेनैव धार्यन्ते तस्माज्ज्येष्ठाश्रमो गृही)।

सुख :—गृहाश्रम में सुख तभी होता है जब स्त्री और पुरुष दोनों परस्पर प्रसन्न विद्वान्, पुरुषार्थी और व्यवहारों के ज्ञाता हों। इसलिये गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

महर्षि ने कहा था—

जो ब्राह्मणादि उत्तम कर्म करते हैं वे ही ब्राह्मणादि और जो नीच भी उत्तम वर्ण के गुण कर्म स्वभाव वाला होवे तो उसको भी उत्तम वर्ण में और जो उत्तम वर्णस्थ होकर नीच काम करे तो उसको नीच वर्ण में गिनना अवश्य चाहिए।

चारों वर्णों में जिस-जिस वर्ण के सदृश जो-जो पुरुष व स्त्री हो वह-वह उसी वर्ण में गिनी जावे।

जितना कुछ व्यवहार संसार में है, उसका आधार गृहाश्रम है। जो यह गृहाश्रम न होता तो सन्तानोत्पत्ति के न होने से ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यासाश्रम कहाँ से हो सकते।

जो कोई गृहाश्रम की निंदा करता है वही निंदनीय है। और जो प्रशंसा करता है वही प्रशंसनीय है।

गृहाश्रम के सुख का मुख्य कारण ब्रह्मचर्य और पूर्वोक्त स्वयंवर विवाह है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पाँच

पंचम समुल्लास के
आधार पर

वानप्रस्थ संन्यास विधि

वानप्रस्थ का विधान :—शतपथ ब्राह्मण के चौदहवें काण्ड में हम पढ़ते हैं कि **'ब्रह्मचर्याश्रमं समाप्य गही भवेत्, गृही भूत्वा वनी भवेत्, वनी भूत्वा प्रव्रजेत्'** मनुष्यों को उचित है कि ब्रह्मचर्याश्रम को समाप्त करके गृहस्थ होकर वानप्रस्थ और वानप्रस्थ होकर के संन्यासी होवे। मनु भी कहते हैं कि **'एवं गृहाश्रमेस्थित्वा विधिवत् स्नातकोद्विज: वने वसेन्तु नियतो यथावत् विजितेन्द्रिय:'**—इस प्रकार स्नातक द्विज (ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य) गृहाश्रम में ठहर कर यथावत् इन्द्रियों को जीत के वन में बसे। **'गहस्थस्तु यदा पश्येद् वलीपलितमात्मन: अपत्यस्यैव चापत्यं तदारण्यं समाश्रयेत्'**—जब गृहस्थ शिर के श्वेत केश व त्वचा को ढीली हुई देखे और लड़के का लड़का भी हो जाये तो वन में जाके बसे।

प्रस्थान :—सब ग्राम के आहार और वस्त्रादि सब उत्तमोत्तम पदार्थों को छोड़ पुत्रों के पास स्त्री को रख व अपने साथ लेके वन में निवास करे **(संत्यज्य ग्राम्याहारं सर्वं चैव परिच्छदम् पुत्रेषु भार्यां नि:क्षिप्य वनं गच्छेत् सहैव वा')**। सांगोपांग अग्नि होत्र लेके ग्राम से निकाल दृढ़ेन्द्रिय होकर अरण्य में जाके बसे **(अग्नि होत्रं समादाय गृह्यं वाग्नि परिच्छदम् ग्रामादरण्यं नि: सृत्य निवसेन्नियतेन्द्रिय:)** ।

वानप्रस्थी का जीवन :—विविध पवित्र मुनियों के खाने योग्य अन्नों से तथा शाक मूल फल से महायज्ञों को विधिपूर्वक करता हुआ अपना निर्वाह करे **(मुन्यन्नैर्विविधैर्मेध्यै: शाकमूल फलेन वा एतानेव महायज्ञान् निर्वपेद् विधि-पूर्वकम्)**। स्वाध्याय अर्थात् पढ़ने पढ़ाने में नित्ययुक्त, जितात्मा, इन्द्रियों का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दमनशील, सब का मित्र, एकाग्र, विद्या आदि का दाता, किसी से भी कुछ न लेने वाला तथा सब पर दयालु हो (**स्वाध्याये नित्ययुक्तः स्याद् दान्तौ मैत्रः समाहितः। दाता नित्यमनादाता सर्वभूतानुकम्पकः**)। शरीर के सुख के लिए अति प्रयत्न न करे, ब्रह्मचर्य से रहे, भूमि पर सोवे, स्वकीय पदार्थों में ममता न करे, वृक्ष के मूल में बसे (**अप्रयत्नः सुखार्थेषु ब्रह्मचारी धराशयः शरणेष्वममश्चैव वृक्षमूलनिकेतनः**) जो शान्त विद्वान् लोग वन में तप धर्मानुष्ठान और सत्य की श्रद्धा करके भिक्षाचरण करते हुए जंगल में वसते हैं, जहां लाभ रहित पूर्णपुरुष हानि लाभ रहित परमात्मा है वहां निर्मल होकर प्राण द्वार से उस परमात्मा को प्राप्त होके आनन्दित होते हैं।

वानप्रस्थ में नाना प्रकार की तपश्चर्या, सत्संग, योगाभ्यास और सुविचार से ज्ञान और पवित्रता को प्राप्त करे। पश्चात् जब संन्यास ग्रहण की इच्छा हो तब स्त्री को पुत्रों के पास भेज देवे। फिर संन्यास ग्रहण करे।

संन्यास ग्रहण

इस प्रकार वनों में आयु के तीसरे भाग में वानप्रस्थ होके आयु के चौथे भाग में संगों को छोड़ के संन्यासी हो जाये। यदि इससे पूर्व भी वस्तुतः वैराग्य हो जाये तो पहले भी संन्यस्त हो सकता है (**यदहरेव विरजेत् तद हरेव प्रव्रजेद् वनाद्वा गृहाद्वा ब्रह्मचर्याद्वा प्रव्रजेत्**')। संन्यासी ब्रह्माश्रयी कहलाता है। यह ब्रह्मनिष्ठ होता है। दुश्चरित्र से दूर हुआ-हुआ, शान्त व एकाग्रचित शान्तमना संन्यासी ज्ञान से प्रभु को प्राप्त करता है। वाणी व मन का यह पूर्ण नियमन करता है। (**यच्छेद् वाङ्मनसी प्राज्ञः**)। '**श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठः**' गुरु के समीप सन्देहों की निवृत्ति करते हुए रहना ठीक ही है। इस प्रकार वेदान्त अर्थात् परमेश्वर प्रतिपादक वेद मन्त्रों के अर्थज्ञान और आचार में अच्छी प्रकार निश्चित संन्यासयोग से शुद्धान्तःकरण संन्यासी होते हैं, वे ही परमेश्वर में मुक्तिसुख को प्राप्त करते हैं (**वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद् यतयः शुद्धसत्वाः। ब्रह्मलोकेषु**)।

संन्यास क्यों? :— 'न वै सशरीरस्य सतः प्रियाप्रिययोरपहतिः अशरीरं वाव सन्तं न प्रियाप्रिये स्पृशतः' जो देहधारी है, वह सुख दुःख की प्राप्ति से पृथक् कभी नहीं रह सकता और जो शरीर रहित जीवात्मा मुक्ति में परमेश्वर के साथ शुद्ध होकर रहता है, तब उसको सांसारिक सुख दुःख प्राप्त नहीं होता। इसलिये '**पुत्रैषणाया वित्तैषणायाश्चं लोकैषणायाश्च व्युत्थायाथ भिक्षाचर्यं**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
चरन्ति'—इस लोक में 'पुत्र, धन व प्रतिष्ठा के मोह से अलग होके संन्यासी लोग भिक्षुक होकर रात दिन मोक्ष के साधनों में तत्पर रहते हैं। '**प्राजापत्यां निरूप्येष्टिं तस्यां सर्ववेदसं ब्राह्मणः प्रव्रजेत्**'—प्रजापति (परमात्मा) की प्राप्ति के अर्थ यज्ञ करके, उसमें सम्पत्ति की आहुति देके ब्राह्मण घर से निकल कर संन्यस्त हो जाये। जो सब प्राणियों के लिए अभय देकर घर से निकल कर संन्यस्त हो जाता है, उसी ब्रह्मवादी को-ब्रह्म के ज्ञान का उपदेश करने वाले को—तेजोमय मोक्षलोक प्राप्त होता है।

संन्यासी का विशेष धर्म

कोई संन्यासी पर क्रोध करे अथवा निन्दा करे तो संन्यासी को उचित है कि उस पर आप क्रोध न करे और उसके कल्याणार्थ ही उपदेश करे। सात द्वारों में (मुख, दो नासिका छिद्र, दो आंखें, दो कान) बिखरी वाणी को किसी कारण से मिथ्या कभी न बोले (**क्रुध्यन्तं न प्रतिक्रुध्येदाक्रुष्टं, कुशलं वदेत्। सप्त द्वारावकीर्णां च न वाचमनृतां वदेत्**)। अपने आत्मा और परमात्मा में स्थिर, अपेक्षारहित, मद्य मांसादि वर्जित होकर आत्मा ही के सहाय से सुखार्थी होकर इस संसार में धर्म और विद्या के बढ़ाने में उपदेश के लिए सदा विचरता रहे (**अध्यात्मरतिरासीनो निरपेक्षो निरामिषः। आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह**) इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोक, रागद्वेष को छोड़, सब प्राणियों से निर्वैर वर्त कर मोक्ष के लिए सामर्थ्य बढ़ाया करे (**इन्द्रियाणां निरोधेन रागद्वेष क्षयेण च। अहिंसया च भूतानाममृतत्वाय कल्पते**)। ब्रह्मवित् संन्यासी को उचित है कि ओंकार-पूर्वक व्याहृतियों से विधिपूर्वक प्राणायाम जितनी शक्ति हो उतने करे, परन्तु तीन से न्यून तो प्राणायाम कभी न करे। यही संन्यासी का परम तप है (**प्राणायामा ब्राह्मणस्य त्रयोपि विधिवत् कृताः। व्याहृतिप्रणवैर्युक्ता विज्ञेयं परमं तपः**) प्राणायामों से इन्द्रियों के दोषों को, धारणाओं से पाप, प्रत्याहार से संगदोष और ध्यान से हर्षशोक आदि जीवदोषों को भस्मीभूत कर दे।

सब भूतों से निर्वैर, इन्द्रियों के विषयों का त्याग, वेदोक्त कर्म और अत्युग्र तपश्चरण से इस संसार में मोक्षपद को सिद्ध करता है। (**अहिंसयेन्द्रियासंगैः वैदिकैश्चैव कर्मभिः। तपसश्चरणैश्चोग्रैः साधयन्तीह तत्पदम्**)इसी प्रकार धीरे-धीरे सब संगदोषों को छोड़ हर्ष शोकादि सब द्वन्द्वों से विमुक्त होकर संन्यासी ब्रह्म ही में अवस्थित होता है (**अनेन विधिना सर्वांस्त्यक्त्वा संगाञ्शनैः शनैः**

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तो ब्रह्मण्यवतिष्ठते)। संन्यासियों का मुख्य कर्म यही है कि सब गृहस्थादि आश्रमों को सब प्रकार के व्यवहारों का सत्य निश्चय करा अधर्म व्यवहारों से छुड़ा सब संशयों का छेदन कर सत्य धर्मयुक्त व्यवहारों में प्रवृत्त कराया करें।

संन्यास का अधिकार

संन्यास का अधिकार ब्राह्मण को ही है। क्योंकि जो सब वर्णों में पूर्ण विद्वान् धार्मिक परोपकार प्रिय मनुष्य है उसी का नाम ब्राह्मण है। विना पूर्ण विद्या के और धर्म व प्रभु में निष्ठा के बिना तथा बिना वैराग्य के संन्यास ग्रहण करने से संसार का उपकार नहीं हो सकता।

संन्यास की आवश्यकता

जैसे शरीर में शिर की आवश्यकता है,वैसे ही आश्रमों में संन्यासाश्रम की है। इसके विना विद्या धर्म कभी नहीं बढ़ सकता। पक्षपात छोड़ कर रहना दूसरे प्राणियों के लिए दुष्कर है। जैसा संन्यासी सर्वतो मुक्त होकर जगत् का उपकार करता है वैसा अन्य आश्रमी नहीं कर सकता। अन्य आश्रमियों के पास उतना अवकाश भी नहीं।

संन्यासी के पुत्र

गृहाश्रम से बहुत सन्तान होकर आपस में विरुद्धाचरण कर लड़ मरें तो कितनी बड़ी हानि हो। समझ के विरोध से लड़ाई होती ही है। जब संन्यासी एक वेदोक्त धर्म के उपदेश से परस्पर प्रीति उत्पन्न करावेगा तो लाखों मनुष्यों को बचा देगा। इस प्रकार सहस्रों गृहस्थों के समान मनुष्यों की बढ़ती करेगा। जो-जो संन्यासियों के उपदेश से धार्मिक मनुष्य होंगे वे सब जानो संन्यासी के पुत्र तुल्य हैं।

संन्यास और कर्म

उपनिषद् के अनुसार 'क्रियावान् एष ब्रह्मविदां वरिष्ठः' यह श्रेष्ठज्ञानी सदाक्रियाशील होता है। 'वैदिकैश्चैव कर्मभिः'इन मनु शब्दों के अनुसार संन्यासी भी धर्मयुक्त सत्य कर्मों में प्रवृत्त रहता है। जब भोजनादि कर्म नहीं छूट सकते तो उत्तम कर्मों को छोड़ने से पाप ही तो होगा। गृहस्थों से अन्न, वस्त्र तो संन्यासी लेगा ही और उपदेश द्वारा उनका प्रत्युपकार नहीं करेगा तो ऋणी हो जायेगा। जैसे आंख से देखना, कान से सुनना न हो तो आंख और कान का होना व्यर्थ है, वैसे ही जो संन्यासी सत्योपदेश और वेदादि सत्यशास्त्रों का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विचार-प्रचार नहीं करते तो वे भी जगत् में व्यर्थ भाररूप हैं। संन्यास का अर्थ है 'सम्यङ् नित्यमास्ते यस्मिन् यद्वा सम्यङ् न्यस्यन्ति दुःखानि (काम्यानि) कर्मणि येनः स संन्यासः' दुष्ट कर्मों का न्यास करके उत्तम कर्मों में अवस्थित होना ही संन्यास है। जितना अवकाश और निष्पक्षपातता संन्यासी को होती है, उतनी गृहस्थों को नहीं। जब गृहस्थ ब्रह्मण भी वेदविरुद्ध आचरण करें तब उनका नियन्ता संन्यासी ही तो होता है।

एक रात :—'एकरात्रिं वसेद् ग्रामे संन्यासी एक स्थान में एकरात्रिमात्र रहे, अधिक नहीं। एकरात्रिवास से जगत् का उपकार अधिक नहीं हो सकता, और अधिक रहने से उस स्थान से ममता का भी संभव है। रागद्वेष के हो जाने की आशंका है। परन्तु यदि एकत्र रहने से विशेष उपकार होगा हो तो रहे। जनक राजा के यहां पंचशिख आदि ने महीनों निवास किया था।

संयान्स तथा धन :—'**विविधानि च रत्नानि विविक्तेषूपादयेत्**' इस मनु-वाक्य के अनुसार सुवर्णादि धन देना ही चाहिये। परन्तु यह भी ठीक है कि जो संन्यासी योगक्षेम से अधिक रखेगा तो चोरादि से पीड़ित और मोहित भी हो जायगा।संन्यासी को धन का विनियोग लोकहित के कार्यों में कर देना चाहिये।

संन्यासी का श्राद्ध में आना :—सच्चा संन्यासी मृतक श्राद्ध में आमन्त्रित होगा तो वह वहां भी ठीक उपदेश करेगा। उसके उपदेश के परिणामस्वरूप मृतक श्राद्ध का पाखण्ड ही दूर हो जायगा। और इस प्रकार पितरों के आने व जाने का विचार ही न रहेगा।

ब्रह्मचर्य से संन्यास :—जो पूर्ण जितेन्द्रिय न हो वह ब्रह्मचर्य से संन्यास न लेवे। वासना को जो रोक सके, उसे ही संन्यास लेना चाहिये। संन्यास लेकर सत्योपदेश व वेदादि सत्यशास्त्रों के अध्ययन में प्रवृत रहना चाहिये।

साधु-वैरागी-गुसाइं :—आज कल के साधु प्रायः अपने संप्रदाय के आचर्यों के वचन मानते और अपने ही मत की प्रशंसा करते, मिथ्या प्रपंच में फंस कर अपने स्वार्थं के लिये दूसरों को अपने२ मत में फंसाते हैं। सुधार करना तो दूर रहा, संसार को बहका कर अधोगति को प्राप्त कराते और अपना प्रयोजन सिद्ध करते हैं। इन्हें संन्यासश्रमी न कहकर 'स्वार्थाश्रमी' कहना ही ठीक है।

सभी संन्यासीः—जो स्वयं धर्म में चलकर सब संसार को चलाते हैं वे ही धर्मात्मा जन संन्यासी और महात्मा हैं।

संन्यास के साथ जीवनयात्रा पूर्ण होती है। इसके आगे 'राजप्रजाधर्म' विषय लिखा जायेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

षष्ठ समुल्लास के
आधार पर

राजा-प्रजा धर्म

राजा का मूल कर्तव्य :—विद्वान् सुशिक्षित होकर क्षत्रिय को योग्य है कि इस सब राज्य की रक्षा न्याय से यथावत् करें (**ब्रह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि सर्वास्याय यथान्यायं कर्तव्यं परिरक्षणम्**) राजा और प्रजा के पुरुष मिलके तीन सभा 'विद्यार्य सभा, धर्मार्यसभा और राजार्यसभा को नियत करके सब को 'विद्या' स्वातन्त्रय, धर्म, सुशिक्षा और धनादि से अलंकृत करें।

राजा स्वच्छन्द नहीं :—'**सभ्यं सभां मे पाहि ये च सभ्यः समासदः**' इस अथर्व मंत्र से स्पष्ट है कि राजा भी सभा का मुख्या सभासद है, उसने भी सभा की व्यवस्था का पालन करना है। शतपथ ब्राह्मण में कहते हैं कि '**राष्ट्रमेव विश्याहन्ति तस्माद्राष्ट्री विशंघातुकः** जो प्रजा से स्वतन्त्र स्वाधीन राजवर्ग रहे तो राज्य में प्रवेश करके प्रजा में राष्ट्रीय भावना को ही नष्ट करता है और इस प्रकार यह स्वच्छन्द राजा प्रजा का नाशक होता है। इसलिये किसी एक को राज्य में स्वाधीन न करना चाहिये। यह स्वतन्त्र राजा प्रजा का नाश करता है, किसी को अपने से अधिक नहीं होने देता, श्रीमान् को लूट खूंद अन्याय से दण्ड लेके अपना प्रयोजन पूरा करेगा।

राजा का चुनाव :—'**इमं देवा असपत्नं सुवध्वम्**' इन यजुर्वेद के शब्दों से यह स्पष्ट है कि राष्ट्र के सब विद्वान् मिलकर इस व्यक्ति को निर्विरोध (सर्वसम्ति से) चुनें। इस सभापति पद के लिये चुने हुए व्यक्ति को चाहिये 'कि वह चर्कृत्य ईड्यो वन्धश्चोपसद्यो नमस्यो भवेह' अथर्व के इन शब्दों के अनुसार 'खूब क्रियाशील, प्रशंसनीय गुणकर्म स्वाभायुक्त, सत्करणीय, समीप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जाने योग्य (Approachable) व सब का माननीय हो। वह सभापति 'इन्द्र' अर्थात् विद्युत् के समान शीघ्र ऐश्वर्य कर्ता, 'वायु' के समान सब को प्राणवत् प्रिय, 'यम' पक्षपात रहित न्यायधीश के समान वर्तने वाला, 'सूर्य' के समान न्याय धर्म विद्या का प्रकाशक, 'अग्नि' के समान दुष्टों को भस्म करने वाला 'वरुण' के सदृश दुष्टों को अनेक प्रकार से बांधने वाला, 'चन्द्र' के तुल्य श्रेष्ठ पुरुषों को आनन्ददाता, 'वित्तेश' के समान कोशों को पूर्ण करने वाला हो (**इन्द्रानिलयमार्कणामग्नेश्च वरुणस्य च। चन्द्रवित्तेशयोश्चैव मात्रा निर्हृत्य शाश्वतीः**) इसी प्ररार महाविद्वानों को विद्यासभाधिकारी, धार्मिक विद्वानों को धर्मसभाधिकारी, प्रशंसनीय धार्मिक पुरुषों को राजसभा के सभासद, और जो उनमें सर्वोत्तम गुणकर्म स्वभावयुक्त महान् पुरुष हो उसको राजसभा का पति रूप मान के सब प्रकार से उन्नति करें।

शासन में दण्ड का स्थान :—मनु लिखते हैं कि जो दण्ड है वही राजा पुरुष, वही नेता व वही शाशक है। वही चार वर्ण और चार आश्रमों के धर्म का प्रतिभू (जामिन) है। (**स राजा पुरुषो दण्डः स नेता शासिता च सः, चतुर्णामाश्रमाणांच धर्मस्य प्रतिभू स्मृतः**) दण्ड ही प्रजाओं का वस्तुतः शासन व रक्षण करता है (**दण्ड शास्ति प्रजाः सर्वा दण्ड एवाभिरक्षते**) यदि दण्ड अच्छे प्रकार विचार से धारण किया जाय तो वह सब प्रजा को आनन्दित कर देता है, और बिना विचारे चलाया जाय तो सब ओर से विनाश का कारण बनता है। **समीक्ष्य स धृतः सम्यक् सर्वाञ्जरयति प्रजाः (असमीक्ष्य प्रणीतस्तु विनशयति सर्वतः**) जो राजा दण्ड को अच्छे प्रकार जानता है व 'धर्म अर्थ व काम' की सिद्धि को बढ़ाता है और जो विषय लम्पट, पक्षपाती और नीच वृत्ति वाला राजा होता है, वह दण्ड से मारा जाता है(**राजा प्रणयन् सम्यक् त्रिवर्गेणाभिवर्धते। कामात्मा विषयः क्षुद्रो दण्डेनैव निहन्यते**) दण्ड के ठीक प्रणयन के दृष्टिकोण से राष्ट्र में मुख्य सेनापति, मुख्य राजाधिकारी, मुख्य न्यायाधीश और राजा ये चार सबविद्याओं में पूर्ण विद्वान् होने चाहियें(**सैनापत्यं च राज्यं च दण्डनेतृत्वमेव च। सर्वलोकाधिपत्यं च वेदशास्त्राविदर्हति।**)

राष्ट्र के नियमों का निर्माण :—राष्ट्र नियमों का निर्माण विद्वानों के ही हाथ में होना चाहिये। केवल बहु सम्मति से इनका निर्णय हो जाना चाहिये। मनु कहते हैं कि 'यदि एक अकेला सब वेदों का जानने हारा द्विजों में उत्तम संन्यासी जिस धर्म की व्यवस्था करे वही श्रेष्ठ धर्म है, क्योंकि अज्ञानियों के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सहस्रों लाखों करोड़ों मिलके जो कुछ व्यवस्था करें उसको कभी न मानना चाहिये' (एकोऽपि वेदविद् धर्मं यं व्यवस्येद द्विजोत्तमः। स विज्ञेयः परो धर्मो न।ज्ञानामुदितोऽयुतैः।)

राजा का व्यसनशून्य जीवन

सब सभासद् और सभापति जितेन्द्रिय बनने के लिए रात दिन नियत समय पर योग का भी अभ्यास करें। क्योंकि स्वयं जितेन्द्रिय होकर के ही वे प्रजा को वश में स्थापित कर सकते हैं। (इन्द्रियाणां जये योगं समातिष्ठेद् दिवानिशम्। जितेन्द्रियो हि शक्नोति वशे स्थापयितुं प्रजाः)। जितेन्द्रिय बन कर 'मृगया (शिकार) जुआ, दिन में सोना, दूसरे की निन्दा, स्त्रियों का अतिसंग, मद्य, नाचना गाना, बजाना और वृथा इधर-उधर घूमना, इन कामज दस व्यसनों को प्रयत्न से छोड़ दे। क्रोधज आठ व्यसनों का भी परित्याग करे। जैसे 'चुगली, अभिमान के कारण अनुचित दण्ड, द्रोह, ईर्ष्या, असूया (गुणों में दोषारोपण), अधर्मयुक्त कार्यों में अर्थ व्यय, और कठोर वचन व कठोर दण्ड'। 'लोभ' इन द्विविध व्यसनों का मूल है, उस लोभ को प्रयत्न से छोड़े।

मन्त्रियों की नियुक्त

जो सुकर (सुगम) कर्म होता है वह भी विशेष सहाय के बिना एक के करने में कठिन हो जाता है। सो राजा को चाहिए कि देश में उत्पन्न हुए, शास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फल न हो, कुलीन और सुपरीक्षित सात व आठ मन्त्रियों को नियुक्त करे। (मौलान् शास्त्रविदः शूरान् लब्धलक्षान् कुलोद्गतान्। सचिवान् सप्त चाष्टौ वा प्रकुर्वीत परीक्षितान्) इन्हें ही 'धी-सचिव' कहते हैं—बुद्धिपूर्वक परामर्श देने वाले।

उल्लिखित सभी सचिवों के अतिरिक्त 'अन्य भी पवित्रात्मा, बुद्धिमान्, निश्चित बुद्धि, पदार्थों के संग्रह में अतिचतुर सुपरीक्षित मंत्रियों को नियत करे' (अन्यानपि प्रकुर्वीत शुचीन् प्राज्ञानवस्थितान् सम्यगर्थसमाहर्तॄन् अमात्यान् सुपरीक्षितान्)। इन कर्मसचिवों की संख्या कार्य के विस्तार पर निर्भर करती है। जितने मनुष्यों से कार्य सिद्ध हो सके, उतने आलस्य रहित बलवान् व चतुर पुरुषों को अधिकारी नियत करे (निवर्तेतास्य यावद्भिरिति कर्तव्यता नृभिः। तावतोऽतन्द्रितान् दक्षान् प्रकुर्वीत विचक्षणान्)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूत

सब शास्त्रों में विशारद, हावभाव और चेष्टा से भीतर हृदय में होने वाली बात को जानने वाला, पवित्र चतुर व कुलीन पुरुष को दूत के रूप में नियत करे (दूतं चैव प्रकुर्वीत सर्वशास्त्रविशारदम्। इंगिताकारचेष्टज्ञं शुचिं दक्षं कुलोद्गतम्) वह दूत ऐसा हो कि राजकाज में अत्यन्त उत्साह प्रीतियुक्त, निष्कपटी, पवित्रात्मा, चतुर बहुत समय की बात को न भूलने वाला, देश और काल के अनुकूल बर्तने वाला, सुन्दर रूप युक्त (रोबीले शरीर वाला) निर्भय और बड़ा वक्ता। ऐसा दूत ही प्रशस्त है (अनुरक्तः शुचिर्दक्षः स्मृतिमान् देशकालवित्। वपुष्मान् नीतभीर्वाग्मी दूतो राज्ञः प्रशस्यते)।

कार्य विभाग

अमात्य को दण्डाधिकार, दण्ड में विनय क्रिया, राजा के अधीन कोश और राजकार्य तथा सभा के अधीन सब राजकार्य और दूत के अधीन सन्धि व विग्रह (विरोध) के कार्य हों (अमात्ये दण्ड आयत्तो दण्डे वैनयिकी क्रिया। नृपतौ कोशराष्ट्रे च दूते सन्धिविपर्ययौ) वह सभापति और सब सभासद् व दूत आदि यथार्थ से दूसरे विरोधी राजा के राज्य का अभिप्राय जानके वैसा यत्न करे कि जिससे अपने को पीड़ा न हो। (बुद्ध्वा च सर्वं तत्त्वेन परराजचिकीर्षितम्। तथा प्रयत्नमातिष्ठेद् यथात्मानं न पीडयेत्)।

पुरोहित

मनु कहते हैं कि 'पुरोहितं प्रकुर्वीत वृणुयादेव चार्त्विजम्। तेऽस्य गृह्याणि कर्माणि कुर्युर्वैतानिकानि च' पुरोहित और ऋत्विज का स्वीकार इसलिए करे कि वे अग्निहोत्र और पक्षेष्टि आदि सब राज घर के कर्म क्रिया करें और आप सर्वदा राजकार्य में तत्पर रहे। अर्थात् यही राजा का सन्ध्योपासनादि कर्म है जो रात-दिन राजकार्य में प्रवृत्त रहना और कोई राजकाम बिगड़ने न देना।

कर

'सांवत्सरिकमाप्तैश्च राष्ट्रादाहारयेद् बलिम्। स्याच्चाम्नायपरो लोके वर्तेत पितृवन्नृषु) अर्थात् वार्षिक कर आप्त पुरुषों के द्वारा ग्रहण करे और जो सभापति रूप राजा आदि प्रधान पुरुष हैं। वे सब वेदानुकूल होकर प्रजा के साथ पिता के समान वर्तें। (यथा फलेन युज्येत राजा कर्ता च कर्मणाम्। तथावेक्ष्य नृपते राष्ट्रे कल्पयेत् सततं करान्', जैसे जोंक, बछड़ा और भौंरा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

थोड़े-थोड़े भोग्य पदार्थ को ग्रहण करते हैं वैसे राजा प्रजा से थोड़ा-थोड़ा वार्षिक कर लेवे। **(नोच्छिन्द्यादात्मनो मूलं परेषां चातितृष्णया। च्छिन्दन् ह्यात्मनो मूलमात्मानं तांश्च पीडयेत्)** अतिलोभ से अपने और दूसरों के सुख के मूल को नष्ट कदापि न करे। क्योंकि जो व्यवहार और सुख के मूल का छेदन करता है। वह अपने को और प्रजा को पीड़ा ही देता है। **(क्षत्रियस्य परोधर्मः प्रजानामेव पालनम्। निर्दिष्टफलभोक्ता हि राजा धर्मेण युज्यते)** राजा का परमधर्म प्रजापालन ही है। शास्त्र निर्दिष्ट कर को लेने वाला राजा ही धर्म से युक्त होकर सुख पाता है।

युद्ध

राष्ट्र-रक्षा के लिए कभी-कभी युद्ध करना भी आवश्यक हो जाता है। 'जब कभी प्रजा का पालन करने वाले राजा को कोई अपने से छोटा, तुल्य और उत्तम संग्राम में आह्वान करे तो क्षत्रियों के धर्म का स्मरण करके संग्राम में जाने से कभी निवृत्त न हो अर्थात् बड़ी चतुराई के साथ उनसे युद्ध करे, जिससे अपना ही विजय हो **(समोत्तमाधमैः राजा त्वाहूतः पालयन् प्रजाः न निवर्तेत संग्रामात् क्षात्रं धर्ममनुस्मरन्)** जो संग्रामों में एक दूसरे को हनन करने की इच्छा करते हुए राजा लोग जितना अपना सामर्थ्य हो, बिना डर, पीठ न दिखा युद्ध करते हैं वे सुख को प्राप्त होते हैं। इससे विमुख कभी न हो। किन्तु कभी-कभी शत्रु को जीतने के लिए उनके सामने से छिप जाना उचित है क्योंकि जिस प्रकार से शत्रु को जीत सके वैसे काम करें। जैसा सिंह क्रोध से सामने आकर शास्त्राग्नि में भस्म हो जाता है वैसे ही मूर्खता से नष्ट भ्रष्ट न हो जावें। **(आहवेषु मिथोऽन्योन्यं जिघांसन्तो महीक्षितः युध्यमानाः परं शक्त्या स्वर्गं यान्त्यपराङ्मुखाः)**

सैनिकों को प्रसन्न रखना

इस व्यवस्था को कभी न तोड़े कि जो जो लड़ाई में जिस-जिस भृत्य व अध्यक्ष ने रथ, घोड़े, हाथी, छत्र, धनधान्य गाय आदि पशु (और स्त्रियां, दासियां) तथा अन्य प्रकार के सब द्रव्य और स्वर्ण, रजत भिन्न धन (घी, तेल आदि के कुप्पे) जीते हों वही उसका ग्रहण करे **(रथाश्वं हस्तिनं छत्रं धनं धान्यं पशून् स्त्रियः। सर्वद्रव्याणि कुप्यं च यो यज्जयति तस्य तद्)** परन्तु सेनास्थ जन भी उन जीते हुए पदार्थों में से सोलहवां भाग राजा को दें। (राज्ञश्च दद्युरुद्धभूमित्येषा वैदिकी श्रुतिः) और जो कोई युद्ध में मर गया

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

हो उसकी स्त्री और सन्तान को उसका भाग देवे और उसकी स्त्री तथा असमर्थ लड़कों का यथावत् पालन करे। जब उसके लड़के समर्थ हो जावें तब उनको यथायोग्य अधिकार देवे। इसी में राज्य की वृद्धि, प्रतिष्ठा, विनय व आनन्द-वृद्धि है।

युद्ध में छलछिद्र का स्थान

मनु लिखते हैं कि (**बकवच्चिन्तयेदर्थान् सिंहवच्च पराक्रमेत्, वृकवच्चावलुम्पेत् शशवच्च विनिष्पतेत**) जैसे बगुला ध्यानावस्थित होकर मछली के पकड़ने को ताकता है वैसे ही अर्थसंग्रह का विचार किया करे। द्रव्यादि पदार्थ और बल की वृद्धि कर शत्रु को जीतने के लिए सिंह के समान पराक्रम करे। चीता के समान छिप कर शत्रुओं को पकड़े और समीप में आये बलवान् शत्रुओं से खरगोश के समान दूर भाग जाये और पश्चात् उनको छल से पकड़े।

रिश्वत का दण्ड

'**ये कार्यकेभ्योऽर्थमेव गृह्णीयुः पापचेतसः, तषां सर्वस्वमादाय राजा कुर्यात् प्रवासनम्**'—जो राजपुरुष वादी प्रतिवादी से गुप्त धन लेके पक्षपात से अन्याय कर उसका सर्वस्व हरण करके यथायोग्य दण्ड देकर ऐसे देश में रखे कि जहाँ से पुनः लौटकर न आ सके। इनके सन्तानों का सत्कार व नौकरी उनके गुण के अनुसार अवश्य देवे। और जिसके बालक जब तक समर्थ हों और उनकी स्त्री जीती हो तो उन सबके निर्वाहार्थ राज की ओर से यथा-योग्य धन मिला करे।

राजा की दिनचर्या

जब पिछली प्रहर रात्रि रहे तब उठ शौच, प्रभुध्यान, अग्निहोत्र व विद्वानों का सत्कार करके सभा में प्रवेश करे। वहाँ खड़ा रहकर जो प्रजाजन उपस्थित हों उनको मान्य दे। अब उनको विदा करके मन्त्रियों के साथ में एकान्त में 'सन्धि-विग्रह' आदि की मन्त्रणा करे। मन्त्र को यथा सम्भव गुप्त रखे। (**उत्थाय पश्चिमे यामे कृत्वः शौचः समाहितः, हुताग्निर्ब्राह्मणांश्चार्च्य प्रविशेत् स शुभां सभाम्ः। तत्र स्थितः प्रजाः सर्वः प्रतिनन्द्य विसर्जयेत्। विसृज्य च प्रजाः सर्वामन्त्रयेत् सह मन्त्रिभिः**) मन्त्रणा की समाप्ति पर राजा व्यायाम व स्नान करके मध्याह्न में भोजन के लिए अन्तःपुर में प्रविष्ट हो (**एवं सर्वमिदं राजा सह समन्त्र्य मंत्रिभिः। व्यायम्याप्लुत्य मध्याह्ने भोक्तुमंतःपुरं विशेत्**)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नीति

नीति का जानने वाला पृथिवीपति राजा सब उपायों से ऐसे वर्तें कि इसके 'मित्र उदासीन व शत्रु' अधिक न हों। संक्षेप में नीति यही है कि यह सभापति ऐसा प्रयत्न करे कि इसे 'मित्र उदासीन व शत्रु' धोखा न दे पायें। सब राजपुरुषों को युद्ध करने की विद्या सिखावे और आप सीखे तथा अन्य प्रजाजनों का भी सिखावे। लड़ने लड़ाने वाले वीरों को (सेना के साथ) आठों दिशाओं में रखे। जिस ओर से लड़ाई होती हो उसी ओर को सब सेना का मुख रखे। परन्तु दूसरी ओर भी पक्का प्रबन्ध रखे नहीं तो पीछे व पार्श्व से शत्रु की घात होने का सम्भव होता है। वृद्ध पुरुषों को तोपों के मुख के सामने घोड़ों पर सवार द्वारा दौड़ावें। जिस समय युद्ध होता हो उस समय लड़ने वालों को उत्साहित व हर्षित करें और जब युद्ध बन्द हो जाये तब सबके चित्त को खान-पान, अस्त्र शस्त्र, सहाय और औषधादि से प्रसन्न रखें। शत्रु को जीत कर उस राज्य में शत्रु के ही वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा कर दें। पराजित का भी सत्कार करे, कभी उसको चिढ़ावे नहीं। 'आप हमारे भाई हैं' इत्यादि शब्दों में प्रतिष्ठा सदा करे। राजा सुवर्ण और भूमि की प्राप्ति से वैसा नहीं बढ़ता जैसा कि दुर्बल भी मित्र को प्राप्त करके बढ़ता है (हिरण्यभूमि संप्राप्त्या पार्थिवो न एधते, यथा मित्रं ध्रुवं लब्ध्वा कृशमप्या यतिक्षयम्)। इसी प्रकार कर भी कठोर न हों। 'पञ्चाशद् भाग आदेयो राज्ञा पशुहिरण्ययोः। धान्यानामष्टमो भागः षष्ठो द्वादश एव वा'— व्यापार करने व शिल्पजनों को सुवर्ण व चाँदी का जितना लाभ हो उनमें से पंचासवां भाग, चावल आदि अन्नों में छठा, आठवां व दशवां भाग ले। यदि किसानों से धन भी ले तो इस प्रकार ले कि जिससे वे दुःखी न हों। प्रजा को अपने सन्तान के सदृश सुख देवे और प्रजा राजा को पिता सदृश समझे।

न्याय

प्रजा वर्ग में अठारह विवादास्पद मार्गों में विवाद उठ खड़ा होता है, जैसे ऋण विषयक विवाद, धरोहर का न देना, दूसरे के पदार्थ को बेच देना, मिलकर किसी पर आक्रमण करना, दिए हुए पदार्थ का न देना, वेतन न देना, प्रतिज्ञा को तोड़ना, क्रय-विक्रय विषयक विवाद, स्वामी व पशुपालन का

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

झगड़ा, सीमा विवाद, कठोर दण्ड, कठोर वाणी, चोरी, बलात्कार, स्त्री-संग्रहण, स्त्री-पुरुष का विवाद, दायभागविषयक विवाद, द्यूत तथा किसी चेतन का दाव पर लगाना (समाह्वय)। सेनापति व राजपुरुष देशाचार और शास्त्र व्यवहार हेतुओं से इन विवादों का निर्णय प्रतिदिन किया करें (प्रत्यहं देशदृष्टैश्च शास्त्रदृष्टैश्च हेतुभिः) और जो-जो नियम शास्त्रोक्त न पावें और उनके होने की आवश्यकता जानें तो उत्तमोत्तम नियम बांधे (बनायें) जिससे कि राजा और प्रजा की उन्नति हो। जब राजसभा में पक्षपात से अन्याय किया जाता है तो अधर्म के चार भाग होकर एक कर्ता को, दूसरा साक्षी को, तीसरा सभासदों को और चौथा सभापति (राजा) को प्राप्त होता है। (**पादोऽधर्मस्य कर्तारं पादः साक्षिणमृच्छति, पादः सर्वान् पादो राजानमृच्छति**)। न्याय के लिए सब वर्णों में धार्मिक विद्वान्, निष्कपटी, सब प्रकार के धर्म को जानने वाले लोभरहित सत्यवादी को साक्षी करे, विपरीतों को कभी न करे (**आप्ताः सर्वेषु वर्णेषु कार्याः कार्येषु साक्षिणः, सर्वधर्मविदोऽलुब्धा विपरीतांस्तु वर्जयेत्**)। बलात्कार आदि गुप्त कर्मों में साक्षी की परीक्षा न करे। जो साक्षी मिथ्या बोलें वे यथायोग्य दण्डनीय हों। न्यायाधीश साक्षी को स्मरण करा दे कि 'हे कल्याण की इच्छा करने हारे पुरुष! जो तू 'मैं अकेला हूँ' ऐसा अपने आत्मा में जानकर मिथ्या बोलता है सो ठीक नहीं है। पुण्य-पाप का देखने वाला वह परमात्मा तेरे हृदय में स्थित है। उससे डर कर सदा सत्य बोलाकर' (**एकोऽहमस्मीत्यात्मानं यत्त्वं कल्याण मन्यसे। नित्यं स्थितस्ते हृद्येष पुण्यपापेक्षिता मुनिः**)।

दण्ड

अपराधों को रोकने के लिए दण्ड आवश्यक है। वस्तुतः दण्ड ही राजा है। जो राजा दण्डनीयों को दण्ड नहीं देता और अदण्डनीयों को देता है वह जीता हुआ बड़ी निन्दा को और मरे पीछे बड़े दुःख को प्राप्त होता है (**अदण्ड्यान् दण्डयन् राजा दण्ड्यांश्चैवाप्यदण्डयन्। अयशो महदाप्नोति नरकं चैव गच्छति**)। चोर जिस प्रकार जिस-जिस अंग से मनुष्यों में विरुद्ध चेष्टा करता है, उस-उस अंग को सब मनुष्यों की शिक्षा के लिए राजा हरण अर्थात् छेदन कर दे (**येन येन यथांगेन स्तेनो नृषु विचेष्टते। तत्तदेव हरेदस्य प्रत्यादेशाय पार्थिवः**) जो जितनी ऊँची स्थिति में हो, अपराध होने पर वह उतना ही अधिक दण्डनीय हो। जिस अपराध में साधारण मनुष्य पर एक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पैसा दण्ड हो, उसी अपराध में राजा को सहस्र पैसा दण्ड हो। राजा बलात्कार काम करने वाले डाकुओं को दण्ड देने में एक क्षण भी देर न करे। जो स्त्री अपनी रिश्तेदारी के घमण्ड से पति को छोड़ व्यभिचार करे, उसको बहुत स्त्री और पुरुषों के सामने जीती हुई को कुत्तों से राजा कटवा कर मरवा डाले। उसी प्रकार अपनी स्त्री को छोड़के जो पर-स्त्री गमन करे उस पापी जन को लोहे के पलंग को अग्नि से तपा लाल कर उस पर सुला कर जीते को बहुत पुरुषों के सम्मुख भस्म कर दे। इस दण्ड को कड़ा दण्ड न समझना चाहिए, चूंकि एक पुरुष को इस प्रकार दण्ड होने से सब लोग बुरे काम करने से अलग रहेंगे। और जो सुगम दण्ड दिया जाये तो दुष्ट काम बहुत बढ़कर होने लगें।

नदी व समुद्रों पर

जो लम्बे मार्ग में समुद्र की खाड़ियां व नदी तथा बड़े नदों में जितना लम्बा देश हो उतना कर स्थापन करे। देश-देशान्तर व द्वीप-द्वीपान्तर में नौका से जाने वाले अपने प्रजास्थ पुरुषों की सर्वत्र रक्षा कर उनको किसी प्रकार का दु:ख न होने देवे।

अत्यन्त आवश्यक

राजा (सभापति) इस बात का सदा ध्यान रखे कि बाल्यावस्था में विवाह न हों। युवास्था में भी बिना परस्पर प्रसन्नता के वे न हों। व्यभिचार व बहुविवाह पर पूर्ण पाबन्दी हो। तभी शरीर और आत्मा दोनों के बलों का संवर्धन सम्भव होगा। राजपुरुष प्रतिदिन यही प्रार्थना करें कि परमात्मा हमारा राजा हो, हम उसके किंकरवत् हों। वह कृपा करके अपनी सृष्टि में हम को राज्याधिकारी करे और हमारे हाथ से अपने सत्य न्याय की प्रवृत्ति करावे।

महर्षि ने कहा था—

एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिए। किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सात

सप्तम समुल्लास के
आधार पर

ईश्वर और वेद

देवाधिदेव महादेव (प्रभु)

सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु वेद द्वारा सब सत्यविद्याओं का उपदेश देते हैं। वेद में जीव के लिए आवश्यक सारा ही ज्ञान दिया गया है। पर ये सब ऋचायें अन्ततः उस प्रभु का ही प्रतिपादन कर रही हैं 'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्'। ये प्रभु सब देवों के अधिदेव हैं। तेतीस देव हैं—ये सब प्राकृतिक शक्तियां दिव्य गुण सम्पन्न होने से देव कहलाती हैं। वेद स्पष्ट कह रहा है कि 'य एक इद्धव्यश्चार्षणीनाम्'—जो एक ही मनुष्यों का उपास्य है वे प्रभु ही इस जगती के सब जगतों को व्याप्त किए हुए हैं। वे ही सब धनों के विजेता हैं—सब प्राणियों के पिता हैं। उस प्रभु की मित्रता में किसी का विनाश नहीं होता। इस प्रभु से निर्मित सब पृथिवी आदि पदार्थ दिव्य गुण युक्त होने से 'देव' कहाते हैं। ये सब ज्योतिर्मय देव उस प्रभु के गर्भ में हैं। लोकत्रयी में स्थित इन सब देवों का वे प्रभु ही धारण कर रहे हैं।

प्रभुसत्ता

इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचना विशेष आदि ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से उस निर्माता सर्वज्ञ प्रभु का भी प्रत्यक्ष होता है। सृष्टि की एक-एक रचना रचयिता का स्मरण कराती है।

२. जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता है, उस क्षण आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय-शंका और लज्जा तथा अच्छे कामों के करने में अभय निःशंकता व आनन्दोत्साह उठता है वह हृदयस्थ परमात्मा की ओर से है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

३. जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है उसको उसी समय दोनों (आत्मा व परमात्मा) प्रत्यक्ष होते हैं।

सर्वव्यापकता

ये प्रभु यदि एकदेश में रहते तो सर्वान्तर्यामी, सर्वज्ञ, सर्वनियन्ता, सब के सृष्टा, सब के धर्ता व प्रलयकर्ता न हो सकते। अप्राप्त देश में कर्ता की क्रिया का सम्भव नहीं। सो प्रभु को सर्वव्यापक ही मानना ठीक है।

ये प्रभु दयालु होते हुए न्यायकारी हैं:—न्याय व दया में वस्तुतः विरोध नहीं है। जो न्याय से प्रयोजन सिद्ध होता है वही दया से। न्यायपूर्वक दण्ड देने का प्रयोजन है कि मनुष्य अपराध करने से बन्द होकर दुःखों को प्राप्त न हो वही दया कहलाती है जो पराये दुःखों को छुड़ाना। जो अपराधी को दण्ड न दिया जाये तो दया का नाश हो जाये, क्योंकि एक अपराधी डाकू को छोड़ देने से सहस्रों धर्मात्मा पुरुषों को दुःख देना है। दया वही है कि उस डाकू को कारागार में रखकर पाप करने से बचाना। ईश्वर की पूर्ण दया तो यह है कि जिसने सब जीवों के प्रयोजन सिद्ध होने के अर्थ जगत् के सकल पदार्थ उत्पन्न कर के दान दे रखे हैं। न्याय का फल प्रत्यक्ष दीखता है कि सुख-दुःख की अवस्था अधिक और न्यूनता से फल को प्रकाशित कर रही है। न्याय और दया का इतना ही भेद है कि जो मन में सब को सुख होने और दुःख छूटने की इच्छा और क्रिया करना है वह दया, और बाह्य चेष्टा अर्थात् बन्धन छेदनादि यथावत् दण्ड देना न्याय कहाता है। दोनों का एक प्रयोजन यह है कि सब को पाप और दुःखों से पृथक् कर देना। एवं दयालुता व न्यायकारित्व में किसी प्रकार का विरोध नहीं है।

साकारता व निराकारता:—प्रभु का निराकार होना आवश्यक है, क्योंकि

१. जो साकार होता तो व्यापक न होता जब व्यापक न होता तो सर्वज्ञत्वादि गुण भी परमात्मा में न घट सकते। परिमित वस्तु में गुण-कर्म-स्वभाव भी परिमित ही रहते हैं।

२. परिमित होने पर प्रभु शीतोष्ण क्षुधा-तृष्णा और रोग, दोष, छेदन भेदन आदि से रहित नहीं हो सकते।

३. जो साकार हो तो उसके अवयवों का बनाने हारा उनको संयुक्त करने वाला निराकार चेतन अवश्य होना चाहिये।

४. यदि यह कहें कि ईश्वर ने स्वेच्छा से आप-ही-आप अपना शरीर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बना लिया तो भी यही सिद्ध हुआ कि शरीर बनाने के पूर्व निराकार था। इसलिये परमात्मा कभी शरीर धारण नहीं करता किन्तु निराकार होने से सब जगत् को सूक्ष्म कारणों से स्थूलाकार बना देता है।

सर्वशक्तिमत्ता :—ये प्रभु सर्वशक्तिमान् हैं। सृष्टि की उत्पत्ति धारण व प्रलय तथा जीवों के पुण्य पाप की यथायोग्य व्यवस्था करने में किंचित् भी किसी की सहायता नहीं लेते। अपने अनन्त सामर्थ्य से ही सब अपना काम पूरा कर लेते हैं। सर्वशक्तिमान् का अभिप्राय यह नहीं कि उपादानकारणभूत प्रकृति के बिना वे अभाव से ही सृष्टि को पैदा कर देंगे अथवा सर्वोपरि होने से मनमाना अत्याचार करने लगेंगे। ये आदि काल से चले आने वाले प्रभु सब की भलाई व सबके लिए सुख चाहते हैं, परन्तु स्वतन्त्रता से किसी को बिना पाप किए दण्ड नहीं देते, और न ही 'स्तुति प्रार्थना-उपासना' से दण्ड को क्षमा कर देते हैं।

प्रार्थना, स्तुति, उपासना :—यदि प्रार्थना से दण्ड मुक्ति नहीं होती तो प्रार्थना करनी ही क्यों ? इसका उत्तर यह है कि प्रार्थना का लाभ निरभिमानता उत्साह और सहाय का मिलना है। स्तुति से ईश्वर में प्रीति, और उसके गुण कर्म-स्वभाव से अपने गुण कर्म स्वभाव का सुधारना और उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होता है।

प्रार्थना का प्रारम्भ तभी होता है जबकि हम अपने में कोई कमी अनुभव करते हैं। इस प्रकार निरभिमान होकर एक समझदार व्यक्ति प्रभु से सर्वप्रथम 'बुद्धि' की प्रार्थना करता है **'तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु'**। मस्तिष्क को उत्तम बना कर वह भुजाओं में शक्ति के लिये प्रार्थना करता है **'तेजोऽसि तेजो मयि धेहि'**। अब वह मनके शिवसंकल्प होने के लिए **'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु'** वाक्य को छः बार दुहराता है। शिवसंकल्प होकर 'हम कभी कुपथ से धन न कमायें' यह उसकी आराधना होती है **अग्ने नय सुपथा राये'**। फिर वह प्रार्थना करता है कि हम माता-पिता व बड़ों को मान करने वाले बनें **(मानो बधीः पितरं मोत मातरम्)**। अन्त में यह प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! आप हमें अशुभ से शुभ की ओर (मन की पवित्रता की ओर) अन्धकार से प्रकाश की ओर (मस्तिष्क की दीप्ति की ओर) मृत्यु से अमृत की ओर (शरीर की नीरोगता की ओर) ले चलिये। यहां प्रार्थना में विधिमुख प्रार्थनायें जैसे मेरे में तेज को धारण करिये, सगुण प्रार्थनायें हैं और 'मेरे अंधकार को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दूर करिये' आदि निषेधमुख प्रार्थनायें 'निर्गुण' प्रार्थनायें कहलाती हैं। इन प्रार्थनाओं को पूर्ण पुरुषार्थ के उपरान्त ही करना ठीक है।जिस बात की मनुष्य प्रार्थना करे, वैसा ही पुरुषार्थ भी करे। ऐसी प्रार्थनायें कभी न करनी चाहियें कि 'मुझको सबसे बड़ा, मेरी ही प्रतिष्ठा कर दीजिये'। जो पुरुषार्थ न करके परमेश्वर के भरोसे आलसी होकर बैठे रहते हैं वे महामूर्ख हैं। प्रभु का आदेश है कि '**कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत**ँ 'समा:' मनुष्य सौ वर्ष तक कर्म करते हुए ही जीने की कामना करे। संसार सब गति में है। सो मनुष्य को गतिशून्य होना ठीक नहीं। पुरुषार्थी का सहाय प्रभु भी करते हैं। 'गुड़ मीठा है' कहने से गुड़ प्राप्त नहीं होता, वह तो पुरुषार्थ से ही प्राप्त होगा। सो जब प्रार्थना करे तो उसके लिये जितना अपने से प्रयत्न हो सके उतना किया करे।

अब यह आराधक प्रभु का स्तवन करता हुआ जिस २ गुण से सहित परमेश्वर को स्तुति करता है वह 'सगुण' स्तुति है, जैसे कि वे प्रभु 'सर्वज्ञ, सर्वन्तर्यामी, सर्वशक्तिमान् व सर्वैश्वर्यसंपन्न हैं। जिस २ राग द्वेषादि गुणों से पृथक् मान कर परमेश्वर की स्तुति करना है वह निर्गुण स्तुति है। इसका फल यह है कि जैसे परमेश्वर के गुण हैं वैसे गुणकर्म-स्वभाव अपने भी करना। जैसे वे न्यायकारी हैं तो स्तोता भी न्यायकारी बनें। जो केवल भांड के समान परमेश्वर के गुण कीर्तन करता जाता और अपने चरित्र नहीं सुधारता उसका स्तुति करना व्यर्थ है।

प्रभु के गुणों को धारण करता हुआ यह प्रभु का उपासक बनता है। उपासना शब्द का अर्थ समीपस्थ होना है और अष्टांग योग से परमात्मा के समीपस्थ होने का संभव होता है। उपासक 'किसी से वैर नहीं करता-सर्वदा सबसे प्रीती रखता है, सत्य बोलता है, अस्तेय धर्म का पालन करता है, जितेन्द्रिय व निरभिमानी बनता है। ये ५ यम ही उपासना का प्रथम अंग हैं। शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय व ईश्वर प्राणिधान' ये पांच नियम उपासना योग का दूसरा अंग है। अब 'आसनों व प्राणायाम' के द्वारा शरीर व इन्द्रियों के दोषों को दूर करके इन्द्रिय रूप गौओं को विषय क्षेत्र से वापस लाना 'प्रत्यहार' है। उन्हें 'ओ३म्' नाम के खूंटे से बांध देना 'धारणा' है। धारणा ही तीव्र हो कर ध्यान बनती है, ध्यान समाधि में पहुंचता है। यही प्रभुका उपासन है। जब इन साधनों को करता है तो आत्मा व अन्तः करण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता हैं। यह उपासक नित्य प्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कर मुक्ति तक पहुंच जाता है। जैसे अग्नि के समीप जाने से शीत से आतुर पुरुष का शीत दूर हो जाता है, वैसे परमेश्वर का सामीप्य प्राप्त होने से सब दोष दूर हो जाते हैं। उपासक का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरायेगा और सब को सहन कर सकेगा। सो प्रभु की 'प्रार्थना स्तुति उपासना' अवश्य करनी ही चाहिये।

सर्वेन्द्रिय गुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्:—पाणि (हाथ) रहित होता हुआ भी वह प्रभु सब का ग्रहीता है, पाद रहित भी सर्वाधिक वेगवान है,चक्षु-गोलक न रखता हुआ भी वह सर्वद्रष्टा है, श्रोत्र रहित होता हुआ सब कुछ सुनता है। प्रभु अपने सब कार्य अपने सामर्थ्य से करते हैं। प्रभु को किन्हीं कारणों की आवश्यकता नहीं। प्रभु 'विभु' (सर्वव्यापक) हैं तथापि चेतन होने से प्रभु में क्रिया भी है,सर्वशक्तिमान् होने के साथ सर्वज्ञ होने के कारण जितने देश काल में क्रिया करनी उचित समझते हैं उतने ही देश काल में क्रिया करते हैं। न अधिक, न न्यन। वे परमात्मा अनन्त हैं और वे अपने 'अन्त को जानते हैं या नहीं' यह प्रश्न ही नहीं पैदा होता। अनन्तता सर्वज्ञता के कारण ही वे 'क्लेश कर्म विपाक व आशयों से रहित हैं।

सांख्य में ईश्वर विषयक विचार:—कपिल ऋषि सांख्यदर्शन में कहते हैं कि वे प्रभु 'अशब्द, अस्पर्श, अरूप अरस व अगान्धवत्' होने से इन्द्रियों का विषय नहीं बनते (ईश्वरासिद्धेः)। एवं प्रत्यक्ष प्रमाण तो सिद्ध करता ही नहीं (प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः) उपादान कारण के रूप में किसी कार्य से सम्बन्ध न होने से प्रभु में अनुमान प्रमाण भी नहीं **(सम्बधाभावान्नानुमानम्)** 'प्रकृति से युक्त परमेश्वर से संसार बनता है' ऐसा मानने पर प्रभु में संगापत्ति दोष आजायेगा। जैसे प्रकृति सूक्ष्म होती हुई भी मिलकर (अणुओं के परस्पर मिलन से)कार्यरूप में संगत हुई है, वैसे परमेश्वर भी(उपादान कारण होने पर) स्थूल हो जायेंगे (**प्रधानशक्तियोगाच्चेद् संगापत्ति**)। केवल प्रभु की सत्ता से जगत् की उत्पत्ति हो तो जैसा परमेश्वर समग्रैश्वर्ययुक्त है वैसे संसार में भी सर्वैश्वर्य का योग होना चाहिये। उपादान कारण के गुण कार्य में आते ही हैं (सत्तामात्राश्चेत् सर्वेश्वर्यम्) '**अजामेकाम् लोहित शुक्लकृष्णाम्** यह उपनिषद् वाक्य भी तो प्रधान को ही जगत् का उपादन कारण मानती है (**श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्याः**) एवं जगत् के उपादान कारणभूत ईश्वर की सिद्धि नहीं होती। हां सर्वज्ञ होने के कारण वे प्रभु प्रकृति से इन विविध

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

लोक लोकान्तारों का निर्माण करते हैं। वे सृष्टि का निमित्त कारण हैं। (सहि सर्ववित् सर्वकर्ता सां ३.५५) और आज होते हुए भी इस प्रकृति का जीव के साथ योग होता है, चूंकि यह प्रकृति प्रभु के अधीन ही तो है। जीव भी फल भोगने में परतंत्रा ही है (**अकार्यत्वे ऽपि तद्योग: पारवश्यात् सां ३.५५**)। कपिलऋषि कहते हैं ऐसे ईश्वर की सिद्धि से सिद्ध ही है, जो कि सर्वज्ञ होने के नाते जीव का प्रकृति के साथ कर्मानुसार मेल किया करते हैं (**ईदृशेश्वर सिद्धि सिद्धा सां ३.५७**)। इस से स्पष्ट है कि कपिलाचार्य को अनीचारवादी समझना ठीक नहीं है)।

अवतारवाद :—'ये प्रभु कभी शरीर धारण करके अवतीर्ण होते हों' सो बात नही है। जिस प्रभु को सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति व प्रलय के लिये अवतार लेने की आवश्यकता नहीं होती, उन्हें 'कंस' आदि दुष्टों के वध के लिये अवतीर्ण होने की क्या आवश्यकता ? वे सर्वव्यापक प्रभु सब के शरीर में व्याप्त हैं जब चाहें, मर्मछेदेन कर उसका विनाश कर सकते है। जो भक्तजन ईश्वर की आज्ञानुकूल चलते हैं उनके उद्धार करने का पूरा सामर्थ्य भी ईश्वर में है। वस्तुत: अनन्त सर्वव्यापक प्रभु का आना जाना कभी सिद्ध नहीं हो सकता, जाना व आना वहाँ हो सकता है, जहां पहले न हो। क्या परमेश्वर गर्भ में व्यापक नहीं था जो कहीं से आया ? और बाहिर नहीं था जो भीतर से निकला। "**यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्**' इन शब्दों में केवल इतना ही कहा गया है कि श्रीकृष्ण जैसे मुक्त पुरुष समय २ पर धर्म के प्रसार के लिये स्वेच्छ से, न कि कर्मफल भोगने के लिये, शरीर धारण करने की कामना करते हैं। प्रभु को अवतार लेने की आवश्यकता नहीं। मुक्त पुरुष ही प्रभु के निर्देश का पालन करने वाले बनते हैं।

पापक्षमा :—यदि कोई प्रभु का भक्त बनता है, तो उसका यह अभिप्राय नहीं है कि उसके पाप क्षमा हो जायेंगे,। 'उसकी पापवृत्ति नष्ट हो जायगी' यह तो ठीक है। पापों की क्षमा होने लगे तो न्याय ही नष्ट हो जायें, और सब मनुष्य महापापी हो जायें। क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जाये। इसलिये सब कर्मों का फल यथावत् देना ही ईश्वर का काम है, क्षमा करना नहीं। जीव कर्म करने में स्वतन्त्र अवश्य है, पर फल भोगने में परतंत्र है। परमेश्वर की अधीनता से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
ही सब काम सिद्ध हों तो जीव को पाप व पुण्य लगे ही न।। पराधीन जीव पाप पुण्य का भागी नहीं हो सकता। इसलिये यही सिद्धान्त है कि 'अपने सामर्थ्यानुकूल जीव कर्म करने में स्वतन्त्र है। परन्तु जब वह पाप कर चुकता है, तब ईश्वर की व्यवस्था में पराधीन हो कर पाप का फल भोगता ही है'। ईश्वर ने जीव को बनाया नहीं, जीव भी अनादि है। अनादि काल से ही प्रभु जीव को कर्मानुसार शरीर व इन्द्रियों की प्राप्ति कराते हैं। ये अब जीव के अधीन ही है। इनके द्वारा पाप पुण्य करने में जीव स्वतन्त्र है।इन कर्मों का फल इस जीव को ही भोगना होता है। तलवार से कोई किसी का वध करता है तो कतल करने वाला ही दण्ड पाता है, न कि तलवार को बनाने वाला। इसी प्रकार शरीरादि की उत्पत्ति करने वाला परमेश्वर उसके कर्मों का भोक्ता नहीं होता। सर्वज्ञ सर्वव्यापक व सर्वशक्तिमान् प्रभु पूर्णतया शुद्ध है। जीव स्वभावतः अल्पज्ञताके कारण पुण्य पापों को करता हुआ हर्ष शोक का पात्र होता है।

त्रिकालदर्शित्व

यह कहना ठीक नहीं कि 'परमेश्वर त्रिकालदर्शी हैं, इससे भविष्यत् की बातें जानते हैं। वे जैसा निश्चय करेंगे जीव वैसा ही करेगा, इससे जीव स्वतन्त्र नहीं। सो वह दण्डनीय भी क्यों हो?' सबसे प्रथम तो यह बात है कि 'भूत भविष्यत्' जीवों के लिए है। प्रभु का ज्ञान सदा एक रस अखण्डित रहता है। जीवों के कर्म की अपेक्षा से त्रिकालज्ञता ईश्वर में है, स्वतः नहीं। जैसा स्वतन्त्रता से जीव करता है,वैसा ही ईश्वर सर्वज्ञता से जानता हैं।ईश्वर का अनादि ज्ञान होने से जैसा कर्म का ज्ञान है, वैसा ही दण्ड देने का भी ज्ञान अनादि है। दोनों ज्ञान उसके सत्य हैं। क्या कर्मज्ञान सत्य और दण्डज्ञान मिथ्या कभी हो सकता है? यह जीव इस शरीर में विभु न होकर परिछिन्न ही है। विभु का आना जाना नहीं हुआ करता। जीव और परमेश्वर व्याप्य व्यापक सम्बन्ध है। जैसे लोहा स्थूल और अग्नि सूक्ष्म है, इसलिए लोहे में अग्नि व्यापक होकर एक ही अवकाश में दोनों रहते हैं, वैसे जीव परमेश्वर जीव से सूक्ष्म होने से परमेश्वर व्यापक और जीव व्याप्य है।

जीव और ब्रह्म

'प्रज्ञानं ब्रह्म', 'अहं ब्रह्मास्मि', 'तत्वमसि' तथा अयमात्मा ब्रह्म' इन उपनिषत् वाक्यों से जीव और परमात्मा को एक ही समझना ठीक नहीं। **'प्रज्ञानंब्रह्म'** का अर्थ तो द्वैत का स्पष्ट ही पोषण करता है—जीव ज्ञान वाला

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

है और ब्रह्म प्रकृष्ट (सर्वोत्कृष्ट, निरतिशय) ज्ञान वाले हैं । **'अहं ब्रह्मास्मि'** का भी भाव यह है कि मैं ब्रह्मस्थ हूँ । जैसे 'मञ्चा: क्रोशन्ति' का अर्थ होता है 'मञ्चस्थ पुरुष पुकारते हैं । जीव ज्ञान व पवित्रता को बढ़ाता हुआ अनुभव करता है कि मैं ब्रह्म में स्थित हूँ । इसीको साहित्य में ऐसा कह देते हैं कि 'मैं ब्रह्म हूँ'—उससे भिन्न आधार में स्थित थोड़े ही हूँ ? ब्रह्म का सहचारी ही तो हूँ । मैं ब्रह्म से अविरुद्ध हूँ । जो जीव परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के अनुकूल अपने गुण-कर्म-स्वभाव करता है, वही साधर्म्य से ब्रह्म के साथ एकता कर सकता है । 'तत् त्वम् असि' में भी आचार्य श्वेतकेतु से कह रहे हैं कि 'वह परमात्मा जानने योग्य है जो यह अत्यन्त सूक्ष्म **(स य एषोऽणिमा)** और इस सब जगत् और जीव का आत्मा है **(एतदात्मभिदं सर्वम्)** वही सत्य स्वरूप और अपनी आत्मा आप ही **(तत्सत्यं स आत्मा)** । ऐ श्वेतकेतो ! उस परमात्मा से तू युक्त है **(तत्वमसि श्वेतकेतो तद्यदेक: तदन्तर्यामी त्वमसि)** । समाधिदशा में जब योगी को परमेश्वर प्रत्यक्ष होता है, तब वह कहता है कि यह जो मेरे में व्यापक है वही ब्रह्म सर्वत्र व्यापक है **'अयम् आत्मा ब्रह्म'** । इस प्रकार इन वाक्यों से जीव ब्रह्म को एक समझना ठीक नहीं है ।

'अनेन जीवेनात्मनानुप्रविश्य नाम रूपे व्याकरवाणीति' तथा **'तत्सृष्ट्वा तदेवानु प्राविशत्'** इन उपनिषत् वाक्यों का भी भाव यह है कि 'परमेश्वर शरीर में प्रविष्ट हुए-हुए जीवों के साथ अनुप्रविष्ट के समान होकर वेद द्वारा सब नाम रूप आदि की विद्या को प्रकट करता है और शरीर में जीव को प्रवेश करा आप जीव के भीतर अनुप्रविष्ट हो रहा है । यहाँ प्रवेश और अनु-प्रवेश' से द्वैत का ही प्रतिपादन है, अद्वैत का नहीं ।

भागत्यागलक्षण से जीव और ब्रह्म को एक मानना वस्तुतः द्वैत का स्वीकार ही है । चूँकि सर्वज्ञत्वादि वाच्यार्थ ईश्वर का और अल्पज्ञत्वादि वाच्यार्थ जीव का छोड़ कर चेतनमात्र लक्ष्यार्थ का ग्रहण करने से अद्वैत की सिद्धि होती है । इस अद्वैत सिद्धि में यह स्पष्ट है कि 'कोई एक ही चेतन कभी सर्वज्ञ व कभी अल्पज्ञ हो जाता है' ऐसा नहीं है । अपितु एक चेतन सदा सर्वज्ञ है वही ब्रह्म है, दूसरा चेतन सदा अल्पज्ञ ही रहता है वही जीव है ।

नवीन वेदान्तियों का यह कहना वाग् अडम्बर मात्र ही है कि 'एक ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विशुद्धाजित् की अविद्या के योग से (कार्य रूप में योग से) जीव रूप में प्रतीत होती है और माया के योग से (कारण रूप में योग से) वही ईश्वर होता है।' विशुद्धाचित् का किसी भी प्रकार अविद्या से सम्बन्ध होने का सम्भव ही नहीं।

'सदेव सोम्येद मग्र आसीदेक मेवाद्वितीयम्' यह छान्दोग्य वाक्य अद्वैत का प्रतिपादक न होकर यह कह रहा है कि 'ब्रह्म के सदृश जीव प्रकृति नहीं है, किन्तु न्यून हैं।' जीव व प्रकृति तथा कार्य रूप जगत् का अभाव नहीं है। ये सब हैं, परन्तु ब्रह्म के तुल्य नहीं। ब्रह्म अनन्त ज्ञान आनन्द बल क्रिया निर्भ्रान्तित्व और व्यापकता को लिए हुए हैं। जीव अल्पज्ञान अल्पबल अल्प-स्वरूप भ्रांति व परिच्छिन्नता आदि वाला है।

'अथोदरमन्तरं कुरुते अथ तस्य भयं भवति' का भाव भी यही है कि जो प्रभु से अपना विरोध करता है अर्थात् प्रभु जैसा बनने का प्रयत्न न करके उससे विरुद्ध दिशा में चलता है तो उसको भय होता है। ब्रह्म व जीव की सत्ता अलग-अलग है। जीव का भी आधार ब्रह्म ही हैं। ब्रह्म से किसी भन्न स्थान में जीव स्थित हो, ऐसी बात नहीं, जीव तथा संसार के सब पदार्थ परमेश्वर में व्याप्य होने से परमात्मा से तीनों कालों में अभिन्न और स्वरूप भिन्न होने से एक कभी नहीं होते।

सगुण व निर्गुण

प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वाभाविक गुणों से सहित होने से 'स-गुण' होता है और दूसरे विरोधी के गुणों से रहित होने से 'निर्गुण' भी होता है। वैसे ही परमेश्वर अनन्त बल ज्ञान आदि गुणों से सहित होने से 'सगुण' हैं तथा प्रकृति के रूप आदि व जीव के द्वेष आदि गुणों से पृथक् होने से 'निर्गुण' हैं। साकार होने से प्रभु को 'सगुण' समझना भ्रम मात्र है। 'प्रभु अवतार लेने पर साकार होकर सगुण होते हैं' यह अज्ञानियों का प्रलाप मात्र है। प्रभु को अवतार लेन की आवश्यकता ही क्या है? वे सर्वव्यापकता सर्वज्ञता व सर्वशक्तिमत्ता के कारण अपने सब कार्य बिना किसी अन्य की सहायता लिए स्वयं ही कर लेते हैं। प्रभु से कोई अन्य पदार्थ उत्तम नहीं है, सो प्रभु को किसी पदार्थ के प्रति राग नहीं। सर्वव्यापक होने से वे कभी किसी पदार्थ को छोड़ेंगे' ऐसी बात न होने से वे विरक्त भी नहीं। रागी व विरक्त अल्पज्ञ जीव ही हुआ करते हैं। ईश्वर में जीवों के समान इच्छा भी नहीं। इच्छा सदा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करने की हुआ करती है। प्रभु को कोई वस्तु अप्राप्त नहीं। प्रभु में ईक्षण तो है। ईक्षण का भाव है 'सब प्रकार की विद्या का दर्शन और सब सृष्टि का करना' (तदैक्षत०) प्रभु ईक्षण करते हैं और सृष्टि की रचना होती है।

वेद ज्ञान

सृष्टि के प्रारम्भ में जो स्वयम्भू प्रभु हैं वे सनातन जीव रूप प्रजा के कल्याणार्थ यथावत् रीति पूर्वक वेद द्वारा सब विद्याओं का उपदेश करते हैं। 'सर्वज्ञ सर्व व्यापक' प्रभु जीवों को वेद विद्या का उपदेश करने में मुखादि की अपेक्षा नहीं रखते। प्रभु अन्तर्यामी रूप से ही जीवों के लिए इसका उपदेश करते हैं। वे जीवस्थ स्वरूप से जीवात्मा में इन वेदों का प्रकाश कर देते हैं। सृष्टि के प्रारम्भ में प्रभु ने 'अग्नि' के हृदय में ऋग्वेद का, 'वायु' के हृदय में 'यजुर्वेद' का, 'सूर्य' के हृदय में सामवेद का तथा 'अंगिरा' के हृदय में 'अथर्ववेद' का प्रकाश किया। वे ही चार सब जीवों से अधिक पवित्रात्मा थे, अन्य उनके सदृश नहीं थे, इसलिए पवित्र विद्या का प्रकाश उन्हीं के हृदयों में वेद (संस्कृत) भाषा में किया। यह वेदभाषा ही आधुनिक सब देशभाषाओं का कारण है। इस सृष्टि के प्रारम्भ के समय ये आधुनिक भाषायें थी ही नहीं। ईश्वर कृत होने से यह वेदज्ञान सत्य है, इसमें किसी भी सृष्टि क्रम के विरुद्ध बात का कथन नहीं है। मनुष्य का ज्ञान स्वाभाविक नहीं है। उसका ज्ञान नैमित्तिक ही है। गुरु शिष्य परम्परा से ही इस ज्ञानधारा का प्रवाह चला करता है। आद्य गुरु प्रभु हैं। (**स पूर्वेषामपि गुरुः कालेन अनवच्छेदात्**) इस योग सूत्र में इसी तथ्य का प्रतिपादन हुआ है। प्रभु ने ही 'अग्नि' आदि के द्वारा ब्रह्मा के आत्मा में इन वेदों का स्थापन कराया। 'यो वै ब्रह्माणंविदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै'। अग्नि आदि ऋषियों को प्रभु ने वेद भाषा का भी ज्ञान दिया और वेद ज्ञान तो दिया ही। धर्मात्मा योगी महर्षि लोग जब-जब जिस-जिसके अर्थ जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो परमेश्वर के स्वरूप में समाधि स्थित हुए तब-तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये।

ब्राह्मण ग्रन्थ

जब बहुतों के आत्माओं में वेदार्थ प्रकाश हुआ तब ऋषि-मुनियों ने वेद अर्थ और ऋषि मुनियों के इतिहास पूर्वक ग्रन्थ बनाये। इन ग्रन्थों के नाम

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

'ब्राह्मण' हुआ, अर्थात् ब्रह्म (वेद) का व्याख्यान । जिस-जिस मन्त्रार्थ का दर्शन जिस ऋषि को हुआ और प्रथम ही जिसके पहिले उस मन्त्र का अर्थ किसी ने प्रकाशित नहीं किया था, किया और दूसरों को पढ़ाया भी, इसीलिए अद्यावधि उस-उस मन्त्र के साथ ऋषि का नाम स्मरणार्थ लिखा आता है। ये ऋषि मंत्रकर्ता नहीं है, ऋषि मंत्रार्थ प्रकाशक हैं । **ऋषयः मंत्रदृष्टारः मंत्रान् सं प्रादुः**' इस यास्क वाक्य का यही अभिप्राय है।

संहिताओं को वेद कहने की परिपाटी है। ब्राह्मण पुस्तकों के आरम्भ व अध्याय समाप्ति पर कहीं 'वेद' शब्द नहीं लिखा जाता । यास्क संहिता से प्रमाण देते हुए लिखते हैं 'इत्यपि निगमो भवति' परन्तु ब्राह्मण को उद्धृत करते हुए स्पष्ट लिखते हैं 'इति ब्राह्मणम्'। पाणिनि भी **'छन्दोब्राह्मणानि च तद्विषयाणि'** सूत्र में वेद और ब्राह्मण को अलग-अलग स्वीकार करते हैं। कात्यायन ने अपनी पुस्तक के प्रारम्भ में यह संकेत किया है कि इस ग्रन्थ में हम मंत्र व ब्राह्मण दोनों को ही 'वेद' नाम से लेंगे। यह उनके लिए लिखना इसीलिए आवश्यक हो गया चूँकि लोक में वेद नाम से दोनों का ग्रहण नहीं होता। कात्यायन के ग्रन्थ में वेद एक परिभाषिक शब्द है, उससे दोनों का ग्रहण होता है। जैसे पाणिनि व्याकरण में गुण शब्द से 'अ ए ओ' को लेना है (**आदेशः गुणः**)।

इन ब्राह्मण ग्रन्थों में ऋषि महर्षि व राजाओं के इतिहास उपलब्ध हैं, वेदार्थ के स्पष्टीकरण के लिए उदाहरण रूप से उनका उद्धरण हुआ है। वेदों में किसी का इतिहास नहीं। किसी मनुष्य की संज्ञा व विशेष कथा का प्रसंग वेदों में नहीं।

शाखा ग्रन्थ

शाखा ग्रन्थ भी व्याख्यान ग्रन्थ ही हैं। उदाहरणार्थ ऋषि ने अपने शिष्यों को **'त्रीणि ज्योंतीषि सचते स षोडशी'** इस मंत्र को पढ़ाते हुए 'सचते' के स्थान में 'दधते' बोल दिया। सो उनके शिष्यों ने 'त्रीणि ज्योतीषि दधते स षोडशी' इस प्रकार ही स्मरण किया। और यह आश्वलायनी शाखा बन गयी। ये शाखायें ११२७ हैं । चार मूल वेद मिल कर ये ११३१ संख्या हो जाती हैं। परमेश्वरकृत चारों वेद मूल वृक्ष हैं और आश्वलायनी आदि सब शाखायें ऋषि मुनिकृत हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वेद नित्यत्व

प्रभु ने सब मनुष्यों पर कृपा करके इस वेदज्ञान के सूर्य को उदित किया। ये वेद प्रभु का ज्ञान हैं। प्रभु के नित्य होने से ये भी नित्य हैं। यह वेद 'शब्द अर्थ व सम्बन्ध' रूप में नित्य है। 'छपी व लिखी पुस्तक नित्य हो' सो बात नहीं। यह कहना भी ठीक नहीं कि 'ईश्वर ने ऋषियों को ज्ञान दिया और ऋषियों ने उस ज्ञान का वेदरूप में संग्रह किया होगा' ऋषियों को छन्दों स्वरों आदि का ज्ञान भी देने वाले वे प्रभु ही हैं। वेदज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद व्याकरण निरुक्त और छन्द आदि ग्रन्थ ऋषि मुनियों ने विद्याओं के प्रकाश के लिए किए हैं। जो परमात्मा वेदों का प्रकाश न करे तो कोई कुछ भी न बना सके। इसलिए वेद ईश्वरीय हैं, इन्हीं के अनुसार सबको चलना चाहिए। जो कोई किसी से पूछे कि तुम्हारा क्या मत है तो यही उत्तर देना कि हमारा मत वेद है, जो कुछ वेदों में कहा गया हैं हम उसी को मानते हैं। 'धियो विश्वा विराजति' यह वेद ज्ञान सब ज्ञानों को अपने में दीप्त कर रहा है।

'यह वेद सृष्टि के विषय में क्या कहता है?' इस बात को अगले समुल्लास मेंदेखिए :—

महर्षि-विचार

प्रश्न—ईश्वर अपने भक्तों के पाप क्षमा करता है व नहीं ?

उत्तर—नहीं, क्योंकि जो पाप क्षमा करे तो उसका न्याय नष्ट हो जावे, और सब मनुष्य महापापी हो जावें. क्योंकि क्षमा की बात सुन ही के उनको पाप करने में निर्भयता और उत्साह हो जावे।

प्रश्न—जीव स्वतन्त्र है या परतन्त्र ?

उत्तर—अपने कर्तव्य कर्मों में स्वतन्त्र और ईश्वर को व्यापकता में परतन्त्र है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

आठ

अष्टम समुल्लास के
आधार पर

सृष्टि उत्पत्ति स्थिति प्रलय विवेचन

सृष्टि का निमित्तकारण प्रभु

'इयं' विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वॉनं इन शब्दों में श्रुति प्रभु को इस सृष्टि का उत्पत्तिकर्ता, धारण व अन्त में प्रलय करने वाला कह रही है। **'जन्माद्यस्य यतः'** इस वेदान्त सूत्र में भी यही कहा गया है कि जिससे इस जगत् का जन्म स्थिति और प्रलय होता है वही ब्रह्म जानने योग्य है। निमित्त कारण परमात्मा से यह जगत् उत्पन्न हुआ है। परन्तु इसका उपादान कारण प्रकृति है। यह सम्पूर्ण जगत् उत्पत्ति से पहले अपने उपादान कारण रूप इस प्रकृतितत्त्व में लीन था **'सलिलं सर्वथा इदम्'** यह सब **'सतिलीनं—सलिलम्'** सत् प्रकृति में लीन था। प्रभु की तुलना में इस 'तुच्छ्य' प्रकृति से आवृत्त हुआ था। प्रभु के तप की महिमा से यह संसार प्रकट हो जाता है। उत्पन्न जगत् का धारण वे प्रभु ही तो कर रहे हैं सब प्राणियों को प्रभु ही शरीर धारण कराते हैं, उनके आधार में ही जीव रहते हैं और अन्ततः उसी में प्रवेश करते हैं। इस ब्रह्म को ही हमें जानने की कामना करनी चाहिए।

उपादान कारण 'प्रकृति'

इस सृष्टि का उपादन कारण प्रकृति भी'अजा'है। वह भी अनादि है 'रजस् तत्व तपस्' का संघात रूप होने से यह 'लोहित (लाल) शुक्ल (सफेद) व कृष्णा' कही गयी है। इस अनादि प्रकृति का भोग अनादि जीव करता हुआ

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

फ़ँसता है, पर परमात्मा न फँसते हैं न प्रकृति का भोग करते हैं (अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः) ब्रह्म और जीव दोनों उत्तम पालनादि गुणों वाले (द्वासुपर्णा) व्याप्य व्यापकता भाव से संयुक्त (सयुजा) परस्पर मित्रता युक्त (सखाया) अपने समान ही अनादि मूल रूप कारण वाले इस संसार वृक्ष का आलिंगन करते हैं (समानं वृक्षं परिषस्वजाते) ब्रह्म और जीव में से एक जो जीव है वह संसार वृक्ष के फल को स्वाद से खाता है (तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति)। दूसरा प्रभु कर्म फलों को न भोगता हुआ सर्वत्र प्रकाशमान होता है (अनश्नन्यः अभिचाकशीति)।

सृष्टि उत्पत्ति

सृष्टि उत्पत्ति से पूर्व प्रलयावस्था में भी यह जगत् अपने कारण में विद्यमान ही था। (सदेव सोम्येदमग्र आसीत्) पर उस समय ये सब लोक लोकान्तर अदृश्य से-असत् प्राय-से-थे (असद्वा इदमग्र आसीत्)। सृष्टि से पूर्व प्रलयावस्था में भी आत्मा थे ही (आत्मैवेदमग्र आसीत्) इन आत्माओं को कर्मानुसार फल देने के लिए सृष्टि का निर्माण करने वाले ब्रह्म तो अनादि काल से हैं ही (ब्रह्म का इदमग्र आसीत्)।

प्रलय की समाप्ति पर प्रभु ने ईक्षण (ज्ञान व तप) किया और उन्होंने प्रकृति से इस सृष्टि के लोक-लोकान्तरों का निर्माण कर दिया। (तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति)। प्रकृति सत् है। प्रकृति कभी पैदा नहीं होती। वे सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् प्रभु अपने ज्ञानरूप तप (ईक्षण) से प्रकृति को इस सृष्टि रूप विकृति के रूप में ले आते हैं। नियत समय पर्यन्त इसके धारण के पश्चात् वे प्रलय कर देते हैं। पर विकृति पुनः प्रकृति के रूप में हो जाती है।

इस उत्पन्न सृष्टि में प्रत्येक पिण्ड प्रभु की सत्ता से व्याप्त है, सो कहते हैं कि 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म'। यह सब तो ब्रह्म से व्याप्त है। सब में समाये हुए वे ब्रह्म 'सर्व' हैं। वे इसे जन्म देने वाले (ज) अन्त में इसका प्रलय कर देने वाले (ल) और वर्तमान में इसका धारण करने वाले (अन्) हैं। सो जीव को चाहिए शान्त होकर 'जलान्—ज, ल, अन्' इस रूप में प्रभु की उपासना करे (तज्जलानिति शान्त उपासीत)। इस प्रभु के आधार में नाना पिण्डों के परस्पर मेल (टकराना) नहीं सै, किन्तु ये सब पृथक्-पृथक् स्वरूप में परमेश्वर के आधार में स्थित हैं (नेह नानास्ति किंचन)।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

करणत्रयी

इस प्रकार इस सृष्टि के तीन कारण हैं। 'निमित्त कारण' प्रभु हैं। वे स्वयं विकृति न होते हुए प्रकृति को रूपान्तरित करते रहते हैं। 'उपादान कारण' प्रकृति है। यही अवस्थान्तर रूप हो कर कभी विकृति व कभी फिर प्रकृति के रूप में प्रभु द्वारा प्राप्त कराई जाती है। 'साधारण कारण' जीव है। जीव के लिए ही प्रभु द्वारा प्रकृति से यह सृष्टि बनायी जाती है। इन तीन कारणों के बिना कोई भी वस्तु नहीं बन सकती और न बिगड़ सकती है। नवीन वेदान्ती **'यथोर्णनाभि सृजते गृह्णतेच'** इस मुण्डकोपनिषद् के वाक्य के आधार से प्रभु को ही सृष्टि का अभिन्न निमित्तोपादान कारण मानते हैं। परन्तु वास्तव में यहां मकड़ी का जड़ रूप शरीर तन्तुओं का उपादान कारण है और जीवात्मा निमित्त कारण है। इसी प्रकार व्यापक ब्रह्म ने अपने भीतर व्याप्य प्रकृति से इस जगत् जाल को तना है। यदि ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण मानें तो ब्रह्म परिणामी अवस्थान्तरयुक्त विकार हो जावे। तथा 'उपादान कारण के गुण कार्य में आते हैं' इस नियम के अनुसार जैसा परमेश्वर चेतन है वैसे पृथिव्यादि कार्य भी चेतन होने चाहियें।

सृष्टि उत्पत्ति क्यों ?

अब प्रश्न यह उठता है कि प्रभु ने यह सृष्टि बनायी ही क्यों ? यदि वे इसे न बनाते जीवों को भी सुख दुःख प्राप्त न होता और प्रभु स्वयं भी कर्तृत्व आदि के झंझटों से बच कर आनन्द में बने रहते। इसका उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं—

(१) यह आलसी और दरिद्र लोगों की बातें है, पुरुषार्थी की नहीं।

(२) जीवों को प्रलय में क्या सुख है ? सृष्टि में दुःख की तुलना में सुख कई गुना अधिक है, और बहुत से पवित्रात्मा जीव मुक्ति के साधन करके मोक्ष के आनन्द को भी प्राप्त होते हैं।

(३) यदि सृष्टि न बने तो प्रलय के पूर्व सृष्टि में जीवों के लिए पाप पुण्य कर्मों का फल ईश्वर कैसे दे सकते और जीव क्यों कर भोग सकते ?

(४) ईश्वर में जो जगत् की रचना करने का विज्ञान बल और क्रिया है, उसका जगत् की उत्पति करने के बिना क्या प्रयोजन हो सकता है ? परमात्मा के न्याय, धारण, दया आदि गुण भी तभी सार्थक हो सकते हैं जब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जगत् को बनावे। जैसे बीज से वृक्ष अंकुरित होता है, इसी प्रकार प्रकृति रूप बीज से यह संसार वृक्ष अंकुरित होता है। प्रभु इस बीज रूप प्रकृति से ही संसार वृक्ष को उत्पन्न करते हैं। निराकार होते हुए भी वे प्रभु अपनी सर्वशक्तिमत्ता से प्रकृति को इस विकृति का रूप देते हैं। यदि प्रभु साकार होते तो हमारी तरह ही वे 'त्रसरेणु, अणु, परमाणु व प्रकृति को अपने वश में न ला सकते। यह कहना तो मूर्खता की ही बात है कि निराकार प्रभु का बनाया जगत् भी निराकार होगा, उपादान कारण 'प्रकृति' निराकार होती तब तो संसार निराकार होता ही। इस उपादान कारण के बिना प्रभु संसार को नहीं बना सकते। पर इसका अभिप्राय यह नहीं कि वे सर्वशक्तिमान् नहीं है। सर्वशक्तिमत्ता का भाव इतना ही है कि वे इस निर्माण के कार्य में किसी अन्य चेतन की सहायता की अपेक्षा नहीं करते। यह प्रकृति अनादि है, संसार का उपादान कारण है। इस प्रकृति का और कोई कारण नहीं है। मूल का मूल नहीं हुआ करता (मूले मूलाभावाद मूलं मूलम्) जगत् की उत्पत्ति के पूर्व 'परमेश्वर प्रकृति जीव' तीनों अनादि रूपेण विद्यमान हैं। यदि इनमें से कोई एक भी न हो तो जगत् भी न हो।

यथापूर्वम् :—प्रभु का ज्ञान पूर्ण है। सो प्रभु की बनाई सृष्टि भी पूर्ण है। इसमें परिवर्तन व सुधार की अपेक्षा नहीं होती। प्रति सृष्टि में संसार का कोई नया मौडल (रूप) न होकर पिछली सृष्टि के समान ही अगली सृष्टि में भी लोकलोकान्तरों का निर्माण होता है **(सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्)** परमेश्वर के कार्य बिना भूल चूक के होने से सदा एक से ही हुआ करते हैं। जो अल्पज्ञ है, उसी के काम में भूल चूक होती है ईश्वर के काम में नहीं।

अविरोध :—(१) तैत्तिरीय उपदिषद् में कहा है कि सर्वप्रथम आकाश हुआ आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल व जल से पृथिवी हुई। छान्दोग्य में अग्नि आदि के क्रम से सृष्टि है, और ऐतरेय में जलादि क्रम से। यह विरोध सा प्रतीत होता है। वस्तुतः विरोध है नहीं।

सृष्टि आकाशादि क्रम से होती है। जब आकाश व वायु का प्रलय नहीं, होता तो अग्नि आदि क्रम से, और जब अग्नि का भी प्रलय नहीं होता तो जल के क्रम से सृष्टि होती है। अर्थात् जिस २ प्रलय में जहां २ तक प्रलय होता है वहां २ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सृष्टि के विषय में कुछ सामान्य विचार :—

१. एक विचारक कहता है कि 'शून्य ही एक पदार्थ है। सृष्टि के पूर्व शून्य था, अन्त में शून्य होगा, क्योंकि जो भाव हैं उसका अभाव होकर शून्य हो जायेगा। इसका उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं कि शून्य का अर्थ आकाश हैं—प्रलय होने पर पृथिवी जल में, जल, अग्नि में, अग्नि वायु में तथा वायु आकाश में लीन हो जाती हैं। अन्त में यह आकाश ही रह जाता है और शून्य का जानने वाला कभी शून्य नहीं होता।

२. दूसरा नास्तिक कहता है कि अभाव से भाव की उत्पत्ति होती है। जैसे बीज का मर्दन किए बिना अंकुर की उत्पत्ति नहीं होती है। (**अभावाद् उत्पत्ति र्नानुपमृद्य प्रादुर्भवेत्**)। उत्तर देते हुए आचार्य कहते हैं कि बीज का उपमर्दन करने वाला प्रथम बीज में था, जो न होता तो उपमर्दन कौन करता और उत्पन्न कभी न होता।

३. तीसरा नास्तिक कहता है कि 'कर्मों का फल प्राप्त होना ईश्वर के अधीन है, जिस कर्म का फल ईश्वर देना चाहे देता है, जिस कर्म का फल देना नहीं चाहता नहीं देता। सो कर्मफल ईश्वराधीन है (**ईश्वर : कारणं पुरुष-कर्माफल्यदर्शनात्**)। इसका उत्तर स्पष्ट है कि यदि ऐसा होता तो बिना कर्म किये भी ईश्वर फल देता है। वस्तुतः जैसा कर्म मनुष्य करता है, वैसा ही फल ईश्वर देता है। स्वतंत्ररूपेण फल नहीं देता रहता।

४. चौथा नास्तिक कहता है कि 'विना निमित्त के पदार्थों की उत्पत्ति होती है जैसे बबूल आदि में तीक्ष्ण अणि वाले कांटे न जाने कहां से आजाते है (**अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टक तैक्षण्यादिदर्शनात्**)। उत्तर स्पष्ट है कि यदि अनिमित्त से ही पदार्थ उत्पन्न होते तो बिना कण्टकी वृक्ष के भी कांटे उत्पन्न हो जाने चाहियें थे।

५. पांचवां नास्तिक कहता है कि 'सब पदार्थ उत्पत्ति और विनाश वाले हैं, इसलिए सब अनित्य हैं (**सर्वमनित्य उत्पत्ति विनाशधर्मकत्वात्**)। उत्तर यह है कि जो उत्पत्ति विनाश वाले हैं, वे अवश्य अनित्य हैं। परन्तु 'ब्रह्म, जीव, तथा जगत् का उपादान कारण प्रकृति' ये तीनों उत्पत्ति विनाश वाले न होने से अनादि व नित्य व सत्य हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

६. छठा नास्तिक कहता है कि 'पांचों भूतों के नित्य होने से सब जगत् नित्य है (सर्वं नित्यं पञ्चभूतनित्यत्वात्)। उत्तर यह है कि सब स्थूल जगत् तथा शरीर घर आदि पदार्थों को उत्पन्न और विनष्ट होते देखते ही हैं, इससे इन कार्य पदार्थों को नित्य नहीं माना जा सकता।

७. सातवां नास्तिक कहता है कि अवयव तो हैं, पर उनसे भिन्न कोई अवयवी पदार्थ नहीं है। सब अवयवों के भाव व लक्षण अलग नहीं हैं। (सर्वं पृथक् भावलक्षणपृथक्त्वात्)। उत्तर यह है कि स्वरूप से सब अवयव पृथक् २ हैं। उन स्वरूपतः पृथक् २ होते हुए अवयवों में एक अवयवी भी है ही। एक वन में वृक्ष अलग २ हैं। उन सब वृक्षों से वन की की सत्ता है ही।

८. आठवां नास्तिक कहता है कि 'सब पदार्थों में इतरेतराभाव की सिद्धि होने से सब अभावरूप हैं। 'गाय' घोड़ा नहीं, और 'घोड़ा' गाय नहीं। सो सबको अभावरूप मानना चाहिये। उत्तर स्पष्ट है कि जो अश्वत्व न हो पर गोत्व तो है ही, इसी प्रकार अश्व में गोत्व न हो पर अश्वत्व तो है ही।

९. नौवां नास्तिक कहता है कि जगत् की उत्पत्ति स्वभाव से ही हो जाती है, इसका बनाने वाला कोई नहीं। उत्तर यह है कि यदि उत्पत्ति स्वभाव से होती है तो विनाश न होना चाहिए। विनाश स्वभाव हो तो उत्पत्ति न हो सकेगी। जो दोनों (उत्पत्ति और विनाश) स्वभाव से द्रव्यों में युगपत् मानोगे तो उत्पत्ति और विनाश की व्यवस्था कभी न हो सकेगी। वस्तुतः, प्रभु प्रकृति के परमाणुओं को ज्ञान और युक्ति से मिलाते हैं और तभी इन पदार्थों का जीवों की कार्य सिद्धि के लिए निर्माण होता है। एवं सृष्टि स्वभाव से नहीं, अपितु परमेश्वर की रचना से ही होती है। इन पृथिवी आदि पदार्थों में संयोग विशेष से रचना होती है। ये पदार्थ अनादि कभी नहीं हो सकते। साथ ही 'जो योगाभ्यास द्वारा उन्नत होते२ कभी ईश्वर ही हो जायेगा' ऐसी बात नहीं है **'न मुक्तानामपि हरेः साम्यम्'** जीव का परम अवधि तक ज्ञान बढ़े तो भी वह परिमित ज्ञान और सामर्थ्य वाला होता है, वह अनन्त ज्ञान व सामर्थ्य वाला कभी नहीं हो सकता। क्या कोई योगी आजतक ईश्वर कृत सृष्टि क्रम को बदलने वाला हुआ है। जीव ईश्वर कभी नहीं हो सकता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(१०)वेदों में कहीं पुरुष और कहीं हिरण्यगर्भ आदि से सृष्ट्युत्पत्ति कही गयी है। पर यह भी विरोध नहीं हैं। चूंकि ये सब नाम उस सृष्टि के निमित्त कारण प्रभु के ही हैं।

(११)मीमांसादर्शन में कर्म, वैशेषिक में काल, न्याय में परमाणु, योग में पुरुषार्थ, सांख्य में प्रकृति और वेदान्त में ब्रह्म से सृष्टि की उत्पत्ति मानी है। वस्तुतः यहां भी विरोध न हो कर परस्पर पूरकता ही है सृष्टि छः कारणों से बनती है उन छः कारणों की व्याख्या एक २ की एक २ शास्त्र में है। एवं उनमें विरोध कुछ भी नहीं।

सृष्टि की उत्पत्ति का क्रम :—जो कोई मूल उपादान कारण (प्रकृति) के बिना सृष्टि मानता है, वह कुछ भी नहीं जानता। **'नासतो विद्यते भावः'** कभी असत का वर्तमान नहीं होता। जब सृष्टि का समय आता है, तब परमात्मा उन परमसूक्ष्म पदार्थों को (प्रकृति परमाणुओं को) इकट्ठा करता है। उसकी प्रथम अवस्था में जो परमसूक्ष्म प्रकृतिरूप कारण से कुछ स्थूल होता है, उसका नाम 'महत्तत्व' और जो उससे स्थूल होता है उसका नाम 'अहंकार' और अहंकार से भिन्न-भिन्न पाँच सूक्षमभूत तथा पांच ज्ञानेन्द्रियां पांच कर्मेन्द्रियां और मन कुछ स्थूल उत्पन्न होता है अन्तः उन पाँच तन्मात्राओं (सूक्ष्म भूतों) से ये प्रत्यक्ष दीखने वाले पांच स्थूल तत्त्व उत्पन्न होते हैं। इन से नाना प्रकार की औषधियां वृक्ष आदि, उनसे अन्न, अन्न से वीर्य और वीर्य से शरीर होता है। परन्तु आदि सृष्टि मैंथुनी नहीं होती क्योंकि जब स्त्री पुरुष के शरीर परमात्मा बनाकर उनमें जीवों का संयोग कर देता, तदन्नतर मैथुनीं सृष्टि चलती है।इस अद्भु तसृष्टि को बिना परमेश्वर के कौन कर सकता है ? जब कोई किसी पदार्थ को देख लेता है, तो दो प्रकार का ज्ञान उत्पन्न होता है। जैसा वह पदार्थ है, और दूसरा उसमें रचना को देखकर रचयिता का ज्ञान है। इस प्रकार यह सृष्टि रचयिता परमेश्वर को सिद्ध करती है।

प्रारम्भ व क्रम :—पहले पृथ्वी आदि की रचना हुई, तत्पश्चात् प्राणि शरीर की पृथिव्यादि के बिना मनुष्य आदि की स्थिति व पालन हो ही कैसे सकता है ? सृष्टि के प्रारम्भ में अमैथुनी सृष्टि में अनेक मनुष्य उत्पन्न हुए क्योंकि जिन जीवों के कर्म ऐश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि के आदि में ईश्वर देता है। **'मनुष्या ऋषयश्चये'** यह यजुर्वेद के

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शब्द उल्लिखित बात को पुष्ट कर रहे हैं। सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक माता-पिता के सन्तान है। इस अमैथुनी सृष्टि में ये प्राणी युवावस्था में हुए। यदि प्रभु बालक उत्पन्न करते तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते, और वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती। इसलिये प्रभु युवावस्था में ही इनकी सृष्टि करते है। इस सृष्टि का कभी प्रारम्भ नहीं। जैसे दिन के पूर्व रात और रात के पूर्व दिन तथा दिन के पीछे रात और रात के पीछे दिन बरावर चला आता है, इसी प्रकार सृष्टि के पूर्व प्रलय और प्रलय के पूर्व सृष्टि तथा सृष्टि के पीछे प्रलय के बाद सृष्टि यह चक्र अनादि काल से चला आता है। इस चक्र का आदि व अन्त नहीं। किन्तु जैसे दिन व रात का आरम्भ और अन्त देखने में आता है, उसी प्रकार सृष्टि और प्रलय का आदि अन्त होता रहता है। प्रभु जीवों को उनके कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियों में जन्म देते हैं। इसी सृष्टि में मनुष्यों की आदि सृष्टि 'त्रिविष्टप' (तिब्बत) में हुई। वर्तमान में वही सर्वोच्च मैदान है। इन मनुष्यों में श्रेष्ठों का नाम आर्य, और दुष्टों को दस्यु कहा जाता है। राजा का कर्तव्य होता है कि राष्ट्र रक्षा के उद्देश्य से वह राज्य में आर्यों वदस्युओं का ज्ञान रखे।(विजातीहि आर्यान् ये च दस्यविः)। आर्यों में भी गुणकर्मानुसार 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र' ये चार भेद हुए।

आर्यावर्त :—जब आर्य और दस्युओं में (देव व असुरों में) लड़ाई बखेड़ा बढ़ा, तब आर्य लोग सब भूगोल में उत्तम इस भूमिखण्ड को जानकर यहीं आकर बसे। इसी से इस देश का नाम 'आर्यावर्त' हुआ। आर्यों के यहां आने से पूर्व इस देश में कोई और लोग न बसते थे। तिब्बत से आते समय कुछ लोग दूसरी ओर गये होंगे। उन्होंने ईरान, आयरलैंड (आर्यलैंड) आदि विविध देशों में निवास किया होंगा। आर्य लोग जब यहां आये तो इससे पूर्व इस देश का नाम कोई नहीं था और न उनके पूर्व इस देशां में कोई बसते थे। आर्यों ने यहां के किसी अन्य आदिवासियों को परास्त किया ऐसी कोई बात नही है।

सृष्टि की उत्पत्ति व धारण:—आज से एक अरब सतानवे करोड़ के लगभग वर्ष पूर्व प्रभु ने सृष्टि का निर्माण करके वेदों का प्रादुर्भाव किया। वर्तमान में प्रभु ही इसका धारण कर रहे हैं। प्रभु उत्पत्ति और प्रलय से पृथक् रहते हैं- इसी से उन्हें 'शेष' कहते हैं। 'शेषधारा पृथ्वी' यह सुन कर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

किसी ने भ्रमवश 'शेष' का अर्थ नाग कर लिया और पृथ्वी को सर्प के फण पर ही स्थित समझ लिया। इसी प्रकार **'अनड्वान् दाधार पृथ्वीमुत द्याम्'** इस अथर्व मंत्र में अनड्वान् को बैल समझ कर किसी ने पृथ्वी को बैलों के सींगों पर ही स्थापित समझ लिया। वस्तुतः यहां 'अनड्वान्' का भाव प्रभु ही है, वे ही इस संसार शकट के खेंचने वाले हैं। अथर्व के अनुसार यही मानना ठीक है कि 'सत्यनोत्तभिता भूमिः' यह भूमि आदि लोक त्रैकाल्याबाध्य प्रभु के द्वारा धारण किये गये हैं। उस अनन्त परमेश्वर के सामने ये सब लोक एक परमाणु के तुल्य भी नहीं हैं। सर्वव्यापक होते हुए वे प्रभु इन सब लोकों का धारण कर रहे हैं। इस ब्रह्माण्ड के अन्दर ये लोक लोकान्तर परस्पर आकर्षण के द्वारा धारित हो भी जायें, तो भी यह ब्रह्माण्ड अपने परभाग सीमा अर्थात् जिसके परे कोई भी दूसरा लोक नहीं है वहाँ किसके आकर्षण से धारण होगा। समष्टि जगत् को धारण करने वाला बिना परमेश्वर के दूसरा कोई भी नहीं। **'स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमामु'** इस यजु मंत्र के अनुसार वे प्रभु ही द्युलोक को अन्तरिक्षलोक को व इस पृथ्वी को धारण कर रहे हैं।

पृथिव्यादि लोकों की स्थिरता व गतिः—ये पृथिवी आदि सब लोक स्थिर न हो कर गति में हैं। **'आयं गौः पृश्निरक्रमीदसन्मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः'** इस यजु मंत्र में कहा है कि 'यह भूगोल जल के सहित सूर्य के चारों ओर घूमता जाता है'। **'हिरण्ययेन सवितारथेनाँ देवो याति भुवनानि पश्यन्'** यह प्रकाशमय हितरमणीय किरणों वाला सूर्य सब भुवनों को प्रकाशित करता हुआ गति करता है। **'दिवि सोमो अधिश्रित'**: चन्द्रमा प्रकाश के लिये सूर्य पर ही आश्रित है। यह सूर्य यदि न घूमता होता तो एक राशि स्थान से दूसरी राशि अर्थात् स्थान को प्राप्त न होता। इस सौर जगत् में एक भूमि के पास एक चन्द्र और अनेक भूमियों के मध्य में एक सूर्य रहता है।

वसुः—पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, चन्द्र, नक्षत्र और सूर्य इनका नाम 'वसु' इसलिये है कि इन्हीं में सब पदार्थ और प्रजा बसती है और ये ही सब को बसाते हैं **(एतेषु हींद सर्वं वसु हितम् एते हीवं सर्वं वासयन्ते)** जब पृथिवी के समान सूर्य चन्द्र और नक्षत्र वसु हैं पश्चात् उनमें इसी प्रकार प्रजा होने में क्या सन्देह? इन सब लोक लोकान्तरों में आकृति का थोड़ा सा भेद संभव है, परन्तु जिस जाति की जैसी सृष्टि इस देश में है वैसी जाति ही की सृष्टि अन्य लोको में भी है। जिस २ शरीर के प्रदेश में नेत्रादि अंग हैं उसी २

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रदेश में लोकान्तर में भी उसी जाति के अवयव भी वैसे ही होते हैं। जिन वेदों का इस लोक में प्रकाश है, उन्हीं का अन्य सब लोकों में भी है। प्रभु सत्य सम्राट् हैं, उनकी नीति सारे ब्रह्माण्डरूप साम्राज्य में एक-सी ही है।

इस ब्रह्माण्ड में शरीर धारण करके जीव का उद्देश्य यह होना चाहिये कि वह जन्म मरण के चक्र से ऊपर उठकर मोक्ष के लिए यत्नशील हो। अगले समुल्लास का यही विषय है।

जन-ज्ञान के नियम

१. जन-ज्ञान मासिक पत्रिका है। इसका उद्देश्य—(अ) महर्षि दयानन्द के लक्ष्य को पूर्ण करना। (ब) संसार के प्रत्येक व्यक्ति तक वेद का पावन संदेह पहुँचाना। (स) अज्ञान, पाखण्ड की समाप्ति के लिए प्रत्येक सम्भव पग उठाना है।

२. "जन-ज्ञान" में व्यक्तिगत राग-द्वेष और पार्टीबाजी के लेख व सूचनायें किसी भी स्थिति में प्रकाशित नहीं किये जायेंगे।

३. वैदिक सिद्धांतों के विरुद्ध विज्ञापनों का प्रकाशन भी किसी भी स्थिति में नहीं होगा।

४. जन-ज्ञान का वार्षिक शुल्क दस रुपया। एक प्रति का ८० पैसे है। सदस्यों को विशेषांक वार्षिक मूल्य में ही दिये जायेंगे। १०१) रुपया देने पर आजीवन सदस्य बनाए जायेंगे।

५. प्रत्येक माह की दो तीन तारीख को 'जन-ज्ञान' भेज दिया जाता है। यदि दस तक भी न मिले तो समझिए आपका 'जन-ज्ञान' कोई और पढ़ रहा है। दस तारीख तक जन-ज्ञान न मिले तो सूचना प्राप्त होने पर 'जन-ज्ञान' दुबारा बिना टिकट लगाये बैरंग भेजा जायेगा। बीस तारीख के बाद किसी भी शिकायती पत्र पर ध्यान नहीं दिया जायेगा।

६. विशेषांक सुरक्षित मंगाने के लिए पचहत्तर पैसे के टिकिट पन्द्रह दिन पूर्व आने चाहिएं। किसी भी प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या लिखना न भूलें।

७. समस्त चैक, मनिआर्डर आदि 'जन-ज्ञान प्रकाशन' के नाम भेजें।

८. नये सदस्य धन भेजते समय 'नया सदस्य' शब्द अवश्य लिखें और मनिआर्डर कूपन पर अपना पूरा पता अवश्य लिखें।

१०. जन-ज्ञान के सदस्यों को जन-ज्ञान प्रकाशन द्वारा प्रकाशित सम्पूर्ण साहित्य पौने मूल्य में दिया जाएगा।

प्रबन्धक—**जन-ज्ञान प्रकाशन**
१५९७, हरध्यानसिंह रोड, करौल बाग,
नई दिल्ली-५

फोन : ५६६६३९

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नौ

नवम समुल्लास के
आधार पर

विद्या-अविद्या और मोक्ष विषय

विद्या-अविद्या:—जो मनुष्य विद्या और अविद्या के स्वरूप को साथ ही साथ जानता है वह 'अविद्या अर्थात् कर्मोपासना से मृत्यु को तैरके विद्या अर्थात् यथार्थज्ञान से मोक्ष को प्राप्त होता है। (**विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह। अविद्या मृत्युं तीर्वा विद्ययामृतमश्नुते**) कर्मोपासना अविद्या इसलिये है कि यह बाह्य और आन्तर क्रिया विशेष है, ज्ञान विशेष नहीं। बिना शुद्ध कर्म और उपासना के मृत्यु दुःख से कोई धार नहीं होता। इस प्रकार 'पवित्र कर्म, पवित्रोपासना व पवित्र ज्ञान' से ही मुक्ति होती है। अधर्म व अज्ञान में फंसा हुआ जीव ही बद्ध है।

बन्ध व मोक्ष की स्वाभाविकता व नैमित्तिकता :—ये बन्ध और मोक्ष स्वभाव से न होकर निमित्त से ही होते हैं। यदि ये स्वाभाविक हों तो इनकी निवृत्ति कभी हो ही नहीं। साथ ही यह कहना भी ठीक नहीं है कि जीव ब्रह्म से भिन्न नहीं है'। ब्रह्म सर्वज्ञ है, और जीव अल्पज्ञ है। अलपज्ञता के कारण ही यह बन्ध में आता है। शीतोष्ण व क्षुधा-तृषा आदि जड़ के धर्म नहीं हैं, चेतन आत्मा ही उनका अनुभव करता है। जीव कर्मों का साक्षी नहीं किन्तु कर्ता-भोक्ता है। कर्मों का साक्षी तो एक अद्वितीय परमात्मा है। जो कर्म करने वाला जीव है वही कर्मों में लिप्त होता है, वह ईश्वर साक्षी इनसे लिप्त नहीं होता 'जीव ब्रह्म का प्रतिविम्ब है' यह कहना भी ठीक नहीं क्योंकि प्रतिबिम्ब साकार का साकार में होता है, तथा जो पृथक् न हो तो भी प्रतिबिम्ब नहीं हो सकता। ब्रह्म के निराकार व सर्वव्यापक होने से उसका

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रतिबिम्ब हो ही नहीं सकता। वेदान्ती कहते हैं कि गम्भीर स्वच्छ जल में निराकार और व्यापक आकाश का आभास पड़ता है, इसी प्रकार स्वच्छ अन्तःकरण में परमात्मा का आभास है, इसीलिये इस (जीव) को 'चिदाभास' कहते हैं। वस्तुतः यह आकाश का प्रतिबिम्ब नहीं। अलग २ पृथिवी जल व अग्नि के त्रसरेणु दिखते हैं उसमें नीलता दिखती है, जो धुंधलापन दिखता है वह पृथिवी से धूलि उड़ कर वायु में घूमती है वह दिखती, और उसी का प्रतिबिम्ब जल व दर्पण में दिखता है, आकाश का कभी नहीं। और यदि सर्वव्यापी ब्रह्म अन्तःकरणों में प्रकाशमान होकर जीव होता है तो उसमें भी सर्वज्ञ आदि गुण होने चाहियें। जीव व संसार को अध्यारोप मात्र समझना भी ठीक नहीं, क्योंकि जब ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ और है ही नहीं तो क्या ब्रह्म ही अपने में जगत् की झूठी कल्पना करेगा? जीव भी वस्तुतः अनादि हैं, वे ही अल्पज्ञता के कारण प्रकृति के विषयों में फंस कर बन्ध का अनुभव करते हैं।

मुक्ति का स्वरूपः—'मुञ्चन्ति पृथग् भवन्ति जना यस्यां सा मुक्तिः' जिन दुःखों से छूटने की इच्छा सब करते हैं, पुरुषार्थ से योग मार्ग पर चलते हुए जब उनसे छूटकर सुख को प्राप्त होते हैं और ब्रह्म में रहते हैं उसे ही मुक्ति कहा जाता है। यह मुक्ति परमेश्वर की आज्ञा पालन, अधर्म व बुरे व्यसनों से अलग रहने, सत्यभाषण व न्याय-धर्म की वृद्धि करने तथा परमेश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना द्वारा ज्ञान व पवित्रता को बढ़ाने से होती है। मुक्त जीव ब्रह्म में बिना रुकावट के सर्वत्र विचरता है। मुक्त जीव का स्थूल शरीर नहीं होता, वह अपने सत्यसंकल्प आदि स्वाभाविक गुण-सामर्थ्य से युक्त होता है। जब सुनना चाहता है तो श्रोत्र, स्पर्श करना चाहता है तब त्वचा तथा देखने के संकल्प से चक्षु आदि हो जाता है (**शृण्वन् श्रोत्रं भवति, पश्यन् चक्षुर्भवति श०**) इस प्रकार संकल्पमात्र शरीर होता है। यह मुक्त अपनी शक्ति से सब आनन्द भोग लेता है। न तो जीव का लय होता है, ना ही भौतिक संग रहता है। शुद्ध सामर्थ्ययुक्त जीव मुक्ति में बना रहता है। अपवित्रता पापाचरण दुःख अज्ञानादि का अभाव हो जाता है। जब शुद्ध मन युक्त पांच ज्ञानेद्रिय जीव के साथ रहती हैं और बुद्धि का निश्चय स्थिर होता है उसको परमगति अर्थात् मोक्ष कहते है (**यदा पंचावतिष्टन्ते ज्ञानानि मनसा सह। बुद्धिश्च न विचेष्टते तामाहुः परमां गतिम्**) जीवन्मुक्त पुरुष ही

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शरीर छूटने पर [illegible] को प्राप्त करता है। सो यह मुक्ति को प्राप्त जीव शुद्ध दिव्य नेत्र और मन से कामों को देखता व प्राप्त होता हुआ रमण करता है। ये मुक्त जीव स्थूल शरीर छोड़ संकल्पमय शरीर से आकाश में परमेश्वर में विचरते हैं। जो २ संकल्प करते हैं, वहं २ लोक और वह २ काम इन्हें प्राप्त होता है। जो शरीररहित मुक्त जीवात्मा ब्रह्म में रहता है उसको सांसारिक सुख-दुःख का स्पर्श भी नहीं होता, किन्तु सदा आनन्द में रहता है।

मुक्ति की सान्तता :—छान्दोग्य उपनिषद् में **'न च पुनरावर्तते न च पुनरावर्तते'** ये शब्द हम पढ़ते हैं। यही बात वेदान्त के **'अनावृतिः शब्दात् अनावृतिः शब्दात्'** इस सूत्र से कही गई हैं। गीता में कहा है कि **यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम'** अर्थात् परमधाम (मुक्ति) में जाकर लौटना नहीं होता वस्तुतः इन वाक्यों का ठीक अर्थ यही है कि 'मुक्ति का पराकाल समाप्त होने से पूर्व ये नहीं लौटते'। वे मुक्त जीव मुक्ति में ब्रह्म में विचरते हुए आनन्द को भोग के पुनः महाकल्प के पश्चात् मुक्ति सुख को छोड़ के संसार में आते हैं (**'ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृतः परिमुच्यन्ति सर्वे'** मुण्डक उ०) 'मुक्ति से भी लौटते हैं' इसलिये यह मुक्ति भी जन्म-मरण के सदृश नहीं हो जाती। क्योंकि जब तक ३६,००० बार उत्पत्ति और प्रलय का जितना समय होता है उतने समय पर्यन्त जीवों को मुक्ति के आनन्द में रहना और दुःख भी न होना क्या छोटी बात है? वेद में प्रार्थना है कि 'कौन नाश रहित पदार्थों के मध्य में वर्तमान देव सदा प्रकाशस्वरूप है जो हमको मुक्ति का सुख भुगाकर पुनः इस संसार में जन्म देता और माता-पिता का दर्शन कराता है। (**'को नो मह्यं अदितये पुनर्दात् पितरं च दृशेयं मातरं च**) इस प्रार्थना से ही स्पष्ट है कि मुक्ति से वापस आना होता ही है। सांख्य में भी कहा है कि **'इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः'** जैसे इस समय बन्ध मुक्त जीव हैं वैसे ही सर्वदा रहते हैं। अत्यन्त विच्छेद बन्ध-मुक्ति का कभी नहीं होता अर्थात् बन्ध और मुक्ति सदा नहीं रहती। **'तदत्यन्त विमोक्षोऽपवर्ग'** इस दर्शन सूत्र में अत्यन्त का अर्थ अत्यन्तभाव न हो कर 'बहुत' ही है। एक बड़े लम्बे समय के लिये छुटकारे को ही यहां 'अत्यन्त विमोक्ष' कहा गया है।

युक्ति से भी मुक्ति की सान्तता ही सिद्ध होती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(१) जीव का समर्थ्य शरीरादि पदार्थ और साधन परिमित हैं, तब उनका फल अनन्त कैसे हो सकता है ?

(२) अनन्त आनन्द को भोगने का असीम सामर्थ्य कर्म और साधन जीवों में नहीं इसलिये अनन्त सुख नहीं भोग सकते ।

(३) जो मुक्ति से कोई भी जीव लौट कर इस संसार में न आवे तो संसार का उच्छेद हो जाना चाहिये। यदि यह कहें कि 'जितने जीव मुक्त होते हैं उतने ईश्वर नये उत्पन्न करके संसार में रख देता है, इसलिये निःशेष नहीं होते'। तब तो जीव ही विनाशशील हो जायगा, उसकी मुक्ति अनन्त कैसे होगी।

(४) यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि जीव दुःख के अनुभव के विना सुख का अनुभव भी नहीं कर सकता। जैसे कोई मनुष्य मीठा-ही-मीठा खाता पीता जाये, उसको वैसा सुख नहीं होता।

(५) यदि ईश्वर अन्त वाले कर्मों का अनन्त फल देवे तो उसका न्याय भी तो नष्ट हो जाय। साथ ही जो जितना भार उठा सके उतना उस पर धरना बुद्धिमानों का काम है। अल्प सामर्थ्य वाले जीव पर अनन्त सुख का भार धरना ईश्वर के लिये ठीक नहीं।

(६) जब मुक्ति से लौटना ही न हो तो, तब तो वह जन्म कारागार के समान हो जायगी। अन्तर केवल इतना ही होगा कि वहां मजूरी नहीं करनी पड़ती। जीव मुक्त होकर के भी परमेश्वर के सदृश नहीं हो जाता। जैसे मरना अवश्य है, तो भी जीवन का उपाय किया ही जाता है, वैसे ही मुक्ति से लौट कर जन्म में आना है तथापि उसका उपाय करना अत्यावश्यक है।

मुक्ति के साधन :—(१) जो मुक्ति चाहे वह मिथ्याभाषणादि पाप कर्मों को छोड़ सत्याभाषणादि धर्माचरण अवश्य करे।

(२) इसी उद्देश्य से वह सत्पुरुषों के संग से विवेक को प्राप्त करने का प्रयत्न करें। विवेक के द्वारा सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्तव्याकर्तव्य का निश्चय करे। साथ ही जीव तथा जीव के शरीर भूत पंच कोशों का विवेचन भी करे। उस परमात्मा का भी चिन्तन करें जिसके द्वारा उत्तम कर्मों को करने के साथ भीतर से 'आनन्द उत्साह और निर्भयता' का अनुभव होता है और बुरे कर्मों में 'भय, शंका व लज्जा' उत्पन्न होती है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(३) इस विवेक व परमात्मचिन्तन से 'वैराग्य' उत्पन्न होगा। संसारिक विषयों के प्रति आसक्ति न रहेगी। असत्य को छोड़ यह साधक सत्य में प्रवृत्त होगा।

(४) अब इसके जीवन में 'शम, दम, उत्परति, तितिक्षा, श्रद्धा व समाधान' रूप षट्क सम्पत्ति का प्रादुर्भाव होगा। यह शम को अपनायेगा, आत्मा और अन्तःकमरण को अधर्माचरण से हटा कर धर्माचरण में सदा प्रवृत रखेगा। 'दम' अर्थात् इन्द्रियों को वश में करके उन्हें शुभ कर्मों में प्रवृत रखेगा। 'उपरति' वाला होगा-दुष्ट कर्मों से उपराम वाला हो जायेगा। 'तितिक्षा' अर्थात् निन्दा व स्तुति में शोक व हर्ष से ऊपर उठेगा। 'श्रद्धा, वेदादि सत्य शास्त्रों पर विश्वास वाला होगा। और 'समाधान' चित्त की एकाग्रता वाला बनेगा।

(५) अब इसे बिना मुक्ति के साधनों व मुक्ति के अन्य बातों में प्रीति न होगी। यह 'मुमुक्षुत्व' वाला होगा। यही पुरुष वस्तुतः मोक्ष प्राप्ति का 'अधिकारी' होता है। यह उन्हीं शास्त्रों को पढ़ता है जिनका कि प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म की प्राप्तिरूप मुक्ति होता है। उन ग्रन्थों व विषय के प्रतिपाद्य प्रतिपादक भाव सम्बन्ध को समझ कर यह एक ही 'प्रयोजन' वाला होता है कि किसी प्रकार सब दुःखों की निवृत्ति व परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष को प्राप्त करूं।

(६) इस उद्देश्य से यह 'श्रवण, मनन, निदिध्यासन व साक्षात्कार' इस श्रवण चतुष्टय को अपनाता है। विद्वानों के उपदेश को शान्त भाव से श्रवण करता है एकान्त में उन्हीं का मनन करता है। उस बात को देखने व समझने का प्रयत्न करता है (निदिध्यासन) और इस प्रकार उस पदार्थ को ठीक रूप में देखता है। यह क्रोध, मलीनता, आलस्य, प्रमाद आदि तामस वृत्तियों से तथा ईर्ष्या,द्वेष, काम,अभिमान, विक्षेप आदि राक्षस वृत्तियों से ऊपर उठकर 'सत्य, शान्ति, पवित्रता' आदि गुणों को धारण करता है। 'मैत्री' सुखी जनों में मित्रता, 'करुणा' दुःखी जनों पर दया, 'मुदिता' पुण्यात्माओं को देख प्रसन्नता व 'उपेक्षा' दुष्टात्माओं पर भी बिना वैर वाला होता है। यही पुरुष जीवन्मुक्त कहलाता है। ऐसा बनने के लिये नित्यप्रति न्यून-से-न्यून दो घण्टा पर्यन्त ध्यान अवश्य करें जिससे भीतर से मन आदि पदार्थ साक्षात् हों।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पांच क्लेशों की निवृत्ति :—इस प्रकार प्रतिदिन इन साधनों के अपनाने से पांचों क्लेशों को योगाभ्यास व विज्ञान के द्वारा छुड़ा कर ब्रह्म को प्राप्त होकर मुक्ति के परमानन्द को भोगना चाहिये। पांच क्लेशों में 'अनित्य को नित्य, अशुचि को शुचि, दुःख को सुख व अनात्मा को आत्मा' समझना ही 'अविद्या' रूप प्रथम होता है। बुद्धि को आत्मा से भिन्न न समझना ही 'अस्मिता' है। सुख में प्रीति ही 'राग' नामक क्लेश है, तथा दुःख में अप्रीति ही 'द्वेष' है। मृत्यु-दुःख से त्रास ही (मानभूवं, भूयासम्) 'अभिनिवेश' है। उल्लखित साधनों के द्वारा इन पांच क्लेशों से छुटकारा पाने वाला पुरुष मुक्ति को प्राप्त करता है। यह ब्रह्म में विचरता है और परमानन्द की अनुभूति वाला होता है। 'मोक्षशिला' में, शिवपुर में, चौथे व सातवें आसमान पर, श्रीपुर, कैलास, वैकुण्ठ व गो-लोक' आदि किसी स्थान में पहुँच कर शान्त व ऐश्वर्यमय जीवन बिताने का नाम 'मोक्ष' नहीं है। ऐश्वर्य व भोगमय जीवन में रोग अवश्यम्भावी है, रोगों के साथ जीर्णता अवश्य आयेगी ही और स्थान विशेष में रहना ही मुक्ति हो तो जरा भी उन स्थानों से पृथक् होते ही मुक्ति समाप्त हो जायेगी। मुक्ति तो यही है कि जहाँ इच्छा हो वहाँ विचरें, कहीं अटकें नहीं। न भय हो, न शंका हो, न दुःख हो। पुराणों में 'सालोक्य' सामीप्य सानुज्य व सायुज्य' रूप से चार प्रकार की मुक्ति कही है, वह मुक्ति तो सब के लिए स्वतः सिद्ध ही है। ईश्वर के लोकों में ही सब प्राणी रहते हैं (सालोक्य), ईश्वर सर्वत्र व्याप्त है—सो सब ईश्वर के समीप हैं (सामीप्य), ईश्वर से जीव सब प्रकार से छोटा और चेतन होने से स्वतः बन्धुवत् है (सानुज्य) और सब जीव सर्वव्यापक परमात्मा में व्याप्य होने से उसके साथ सायुज्य वाले हैं ही। इसके अतिरिक्त वेदान्ती ब्रह्म में लय होने को मोक्ष समझते हैं। यह भी ठीक नहीं। चूँकि जीव का विनाश नहीं हो जाता। अपने विनाश के लिए कोई प्रयत्न करेगा भी क्यों? ब्रह्म में विचरना ही मोक्ष है।

जन्मों की अनेकता

यह मोक्ष की साधना एक जन्म में पूरी हो जानी कठिन है। इसीसे गीता में कहा है कि (**अनेक जन्म संसिद्धस्ततो याति परां गतिम्**)—कितने ही जन्मों में सिद्धि को प्राप्त हुआ-हुआ परागति अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है। जन्म अनेक हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
(१) अल्पज्ञ होने के कारण जीव को पूर्व जन्म का स्मरण नहीं होता। जिस मन से ज्ञान करता है, वह भी एक समय में दो ज्ञान नहीं कर सकता।

(२) प्रभु ने यह विस्मरण की व्यवस्था ठीक ही की है, अन्यथा जीव सब जन्मों के दुःखों को देख कर दुःखित होकर ही मर जाता।

(३) संसार में एक जगह राज, धन, बुद्धि व विद्या है, दूसरे स्थान पर दारिद्रय व मूर्खता है। इस सुख दुःख को देख कर हमें पूर्वजन्म का ज्ञान कर ही लेना चाहिए। अन्यथा परमेश्वर पक्षपाती हो जायगा। चूँकि प्रभु न्याय ही चाहते व करते हैं, इसी से वे पूजनीय हैं। प्रभु हमारे कर्मों के अनुसार ही हमें अगले जन्म में 'जाति आयु व भोग' को प्राप्त कराते हैं। उनका विचार जीवों के कर्मानुसार ही होता है, अन्यथा नहीं। जो अन्यथा हो तो प्रभु अपराधी व अन्याय भी हो जाये।

यदि परमेश्वर बिना हमारे कर्मों के, स्वेच्छा से फल दे तो धर्म का फल मिलने में सन्देह होगा। परिणामतः पाप कर्मों की वृद्धि और धर्म का क्षय हो जायेगा। इसीलिए यही मानना ठीक है कि पूर्वजन्म के पुण्य पाप के अनुसार वर्तमान जन्म और वर्तमान तथा पूर्वजन्म के कर्मानुसार भविष्यत् जन्म होते हैं।

कर्मानुसार जन्म

मनुष्य और पशु आदि के शरीर में जीव एक-से हैं। परन्तु पाप पुण्य के योग से मलिन और पवित्र होते हैं। जब पाप बढ़ जाता और पुण्य न्यून होता है तब मनुष्य का जीव पशु आदि नीच शरीर और जब धर्म अधिक तथा अधर्म न्यून होता है तब देव अर्थात् विद्वानों का शरीर मिलता है और जब पुण्य पाप बराबर होते हैं तब साधारण मनुष्य जन्म होता है। इनमें भी पुण्य पाप के उत्तम निकृष्ट होने से मनुष्यादि में भी उत्तम मध्यम निकृष्ट शरीरादि सामग्री वाले होते हैं। जब शरीर को छोड़ता है, इसी का नाम मृत्यु है। शरीर छोड़ने पर यह यमालय अर्थात् आकाशस्थ वायु में रहता है 'अयं व यमः योऽयं पवते)। पश्चात् धर्मराज (प्रभु) इस जीव के पाप पुण्यानुसार जन्म देते हैं। जो स्त्री के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो स्त्री और पुरुष के शरीर धारण करने योग्य कर्म हों तो पुरुष के शरीर में प्रवेश करता है। इसी प्रकार नाना प्रकार के जन्म मरण में तब तक जीव पड़ा रहता है कि जब तक उत्तम कर्मोपासना ज्ञान को कर के मुक्ति को नहीं पाता। जब

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

इस जीव के हृदय की अविद्या अज्ञानरूपी गांठ कट जाती, सब संशय छिन्न होते और दुष्ट कर्म क्षय को प्राप्त होते हैं तभी परमात्मा में निवास करता है। अविद्या ग्रन्थि के कटने का सम्भव सामान्यत: कई जन्मों की अपेक्षा करना है। सो मुक्ति एक जन्म में न होकर कई जन्मो में होती है। 'बहूनां जन्मनामान्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते'। मुक्ति में जीव परमेश्वर में विचरता है, उसका लय (विनाश) नहीं हो जाता। 'सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्राह्मणा विपश्चिता' वह मुक्त जीव व्यापक रूप ब्रह्म में स्थित होकर उस अनन्त विद्यायुक्त ब्रह्म के साथ सब कामों को प्राप्त होता है।

मुक्ति का कार्यक्रम

वह मुक्त जीव अनन्त व्यापक ब्रह्म में स्वच्छन्द घूमता, शुद्ध ज्ञान से सब सृष्टि को देखता, अन्य मुक्तों के साथ मिलता, सृष्टि विद्या को क्रम से देखता हुआ सब लोक-लोकान्तरों में घूमता है। वह सब पदार्थों को जो कि उसके ज्ञान के आगे है, देखता है। जितना ज्ञान अधिक होता है, उसको उतना ही आनन्द अधिक होता है।

स्वर्ग-नरक

जो सांसारिक सुख है वह सामान्य स्वर्ग और जो परमेश्वर की प्राप्ति से आनन्द है वही विशेष स्वर्ग कहाता है। जब मनुष्य धर्म करता है और पाप को छोड़ता है तभी स्वर्ग को प्राप्त होता है। जो नर शरीर से चोरी पर-स्त्री गमन व श्रेष्ठों को मारने आदि दुष्कर्म करता है उसको वृक्षादि स्थावर का जन्म, वाणी से किये पाप कर्मों से पक्षी और मृगादि तथा मन से किए दुष्ट कर्मों से चांडाल आदि का शरीर मिलता है। जो मनुष्य सात्विक हैं वे देव अर्थात् विद्वान्, जो रजोगुणी होते हैं वे मध्यम मनुष्य और जो तमोगुण युक्त होते हैं वे नीच गति को प्राप्त होते हैं। इन गुणों के स्वभावों में न फँस कर गुणातीत बनने का प्रयत्न करना ही मुक्ति का मार्ग है। चित्त वृत्ति का निरोध ही योग है। जब चित एकाग्र और निरुद्ध होता है तब सब के द्रष्टा ईश्वर के स्वरूप में जीवात्मा की स्थिति होती है। यह ब्रह्म निष्ठ व्यक्ति त्रिविध (आध्यात्मिक, आधिभौतिक व आधिदैविक) दु:खों से ऊपर उठकर मुक्ति को पाता है। यही मनुष्य का अत्यन्त पुरुषार्थ है।

अब दशम समुल्लास में आचार-नाचार व भक्ष्याभक्ष्य का विषय लिखा जायेगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दस

दशम समुल्लास के
आधार पर

आहार-विहार

आचार के विषय में परम प्रमाण (श्रुति)

मनुष्यों को सदा इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि जिसका सेवन रागद्वेषरहित विद्वान् लोग नित्य करें, जिसको हृदय अर्थात् आत्मा से सत्य कर्तव्य जानें वही धर्म माननीय और करणीय है। सम्पूर्ण वेद मनुस्मृति तथा ऋषि प्रणीत शास्त्र, सत्पुरुषों का आचार और जिस-जिस कर्म में अपना आत्मा प्रसन्न रहे अर्थात् 'भय, शंका लज्जा' जिनमें न हो उन कर्मों का सेवन करना उचित है। वेद (स्मृति) सत्पुरुषों का आचार, और अपने आत्मा के ज्ञान से अविरुद्ध प्रियाचरण ये चार धर्म के लक्षण हैं, इन्हीं से धर्म लक्षित होता है। जो द्रव्यों के लोभ और काम अर्थात् विषय सेवा में फंसा हुआ नहीं होता उसीको धर्म का ज्ञान होता है। जो धर्म को जानने की इच्छा करें उनके लिए वेद ही परम प्रमाण हैं।

बाल (केश)

ब्राह्मण के सोलहवें, क्षत्रिय के बाईसवें और वैश्य के चौबीसवें वर्ष में केशान्त कर्म क्षौर मुण्डन हो जाना चाहिए। अर्थात् इस विधि के पश्चात् केवल शिखा को रख के अन्य दाढ़ी-मूँछ और सिर के बाल सदा मुंडवाते रहना चाहिए अर्थात् पुनः कभी न रखना और जो शीतप्रधान देश हो तो कामचार है जितने चाहे केश रखे। जो अति उष्ण देश हो तो सब शिखा सहित छेदन करा देना चाहिए क्योंकि शिर में बाल रहने से उष्णता अधिक होती है और उससे बुद्धि कम हो जाती है। दाढ़ी-मूँछ रखने से भोजन-पान अच्छे प्रकार नहीं होता और उच्छिष्ट भी बालों में रह जाता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जितेन्द्रियता:—मनुष्य का यही मुख्य आचार है कि जो इन्द्रियां चित्त को हरण करने वाले विषयों में प्रवृत करती हैं उनको रोकने में प्रयत्न करें। जैसे घोड़े को सारथि रोक कर शुद्ध मार्ग चलाया करे (**इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषुपहारिषु, संयमे यत्नमातिष्ठेद् विद्वान् यन्तेव वाजिनाम्**) इन्द्रियों की विषयाशक्ति और अधर्म में चलाने से मनुष्य निश्चित दोष को प्राप्त होता है, और जब इनको जीत कर धर्म में चलाता है तभी अभीष्ट सिद्धि को प्राप्त होता है। (**इन्द्रियाणां प्रसंगेन दोषमृच्छत्यसंशयम् । सन्नियम्य तु तान्येव ततः सिद्धिं नियच्छति**) पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय और ग्यारवें मन को अपने बश में करके मुक्ताहारविहार योग से शरीर की रक्षा करता हुआ सब अर्थों को सिद्ध करे। (**वशे कृत्वेन्द्रियग्रामं संयम्य च मनस्तथा । सर्वान् संसाधयेदर्थान् अक्षिण्वन् योगतस्तनुम्**) जितेन्द्रियता ही सदाचार के वृत का केन्द्र है। इसके अभाव में सदाचार का प्रश्न ही नहीं उठता।

सत्य:—'**सत्ये सर्वं प्रतिष्ठितम्**' सत्य ही सब का आधार है। पर इस सत्य को बड़ी समझदारी से बोलना चाहिए। '**यद्भूतहितमत्यन्तं तत्सत्यमितिधारणा**।' भूतों के अधिक-से-अधिक कल्याण करने वाली बात ही सत्य है। इस सत्य के विषय में मनु का यह निर्देश सदा स्मर्तव्य है कि '**न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्**' अप्रिय सत्य न बोलना ही ठीक है। साथ ही कभी बिना पूछे व अन्याय से पूछने वाले को कि जो कपट से पूछता हो उसको उत्तर न देवे। परिस्थितिवश यदि आवश्यकता पड़े तो उनके सामने जड़ के समान आचरण करें ('**नापृष्टः कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः । जानन्नपि हि मेधावी जडवल्लोक आचरेत्**')।

विद्या:—जीवन में धन, कुल, अवस्था, उत्तम कर्म और पांचवीं विद्या, वे पांच मान्य के स्थान हैं इनमें भी पिछला २ अधिक माननीय है। एवं विद्या का स्थान सर्वोपरि है। (**वित्तं बन्धुर्वयः कर्म विद्या भवति पंचमी । एतानि मान्यस्थानानि गरीयो यद्यदुत्तरम्**) अधिक वर्षों के बीतने, श्वेत बालों के होने, अधिक धन से और बड़े कुटुम्ब के होने से वृद्ध नहीं होता, किन्तु ऋषि महात्माओं का यही निश्चय है कि जो हमारे बीच में विद्या विज्ञान में अधिक हैं वही वृद्ध पुरुष कहाता है। (**न हायनैर्न पलितैर्न वितेन न बन्धुभिः ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योऽनूचानः स नो महान्**) शिर के बाल सफेद होने से वृद्ध नहीं होता, किन्तु जो युवा विद्या पढ़ा हुआ है उसी को विद्वान् लोग

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
बड़ा जानते हैं। (**न तेन वृद्धो भवति येनास्य पलितं शिरः। यो वै युवाप्यधीयानस्तं देवाः स्थविरं विदुः**)।

अहिंसा व मधुर भाषण:—विद्या पढ़ कर विद्वान् धर्मात्मा होकर, निर्वैरता से सब प्राणियों को कल्याण का उपदेश करें। उपदेश में वाणी मधुर और कोमल बोले (**अहिंसयैव भूतानां कार्यश्रेयोऽनुशासनम्। वाक् चैव मधुराश्लक्षणा प्रयोज्या धर्ममिच्छता**)।

पवित्रता (शौच)—नित्य स्नान करे तथा वस्त्र, अन्न, पान, स्थान सब शुद्ध रखें क्योंकि इनके शुद्ध होने में चित्त की शुद्धि और आरोग्यता प्राप्त होकर पुरुषार्थ बढ़ता है। शौच (सफाई) उतना करना योग्य है कि जितने से मल, दुर्गन्ध दूर हो जाये।

शिष्टाचार (Good Manners):—**आचारः प्रथमो धर्मः श्रुत्युक्त स्मार्त एव च**' इस मनु के शब्दों में शिष्टाचार का पालन सामाजिक मधुरता के लिये आवश्यक है। इस पर श्रुति व स्मृतियों में बल दिया गया है। **मातृदेवो भव, पितृ देवो भव, आचार्यं देवो भव अतिथिदेवो भव**' इन तैत्तिरीय उपनिषद् के शब्दों के अनुसार 'माता, पिता, आचार्य व अतिथि' का पूजन आवश्यक है।

परोपकारः—जिस २ कर्म से जगत् का उपकार हो वह २ कर्म करना और हानिकारक छोड़ देना ही मनुष्य का मुख्य कर्त्तव्य कर्म है।

सत्संगः—कभी नास्तिक, लम्पट, विश्वासघाती, मिथ्यावादी, स्वार्थी, कपटी, छली आदि दुष्ट मनुष्यों का संग न करे। आप्त जो सत्यवादी धर्मात्मा परोपकार प्रिय जन हैं उनका सदा संग करने ही का नाम श्रेष्ठाचार है।

विदेशयात्रा व सदाचार:—आर्यावर्त से भिन्न २ देशों में जाने से आचार नष्ट नहीं हो जाता। जो बाहिर भीतर की पवित्रता करनी व सत्य-भाषणादि आचरण करना है वह जहाँ कहीं करेगा आचार व धर्म से भ्रष्ट कभी न होगा। और जो आर्यावर्त में रह कर भी दुष्टाचार करेगा वही धर्म व आचार से भ्रष्ट कहावेगा। यदि विदेशयात्रा में पाप होता तो

(क) व्यास अपने पुत्र शुकसहित पाताल (अमेरिका) की यात्रा न करते। (महाभारत शान्तिपर्व)

(ख) श्री कृष्ण तथा अर्जुन अग्नियान नौका से पाताल में जाके उद्दालक ऋषि को युधिष्ठिर के यज्ञ में लाये थे।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(ग) धृतराष्ट्र का विवाह गांधार की राजपुत्री से हुआ था।

(घ) 'माद्री' जो पाण्डु की पत्नी थी वह ईरान के राजा की कन्या थी।

(ङ) अर्जुन का विवाह पाताल के राजा की कन्या उलूपी के साथ हुआ था। जो आर्य लोग देश-देशान्तर व द्वीप-द्वीपान्तर में न जाते होते तो ये सब बातें क्योंकर हो सकतीं।

(च) मनुस्मृति में समुद्र पर जाने वाली नौका पर कर लेना लिखा है, वह भी आर्यावर्त से द्वीपान्तरों में जाने का पोषण करता है। पहले आर्यावर्त देशीय लोग व्यापार राज्यकार्य व भ्रमण के लिये सब भूगोल में घूमते थे। आजकल जो छूतछात और धर्मभ्रष्ट होने की शंका है, वह केवल मूर्खों के बहकाने और अज्ञान बढ़ने से है। देशदेशान्तर में उत्तम पुरुषों के साथ समागम में छूत और दोष मानना मूर्खता ही है। हाँ उनके मांसभक्षण व मद्यपान आदि दोषों को ग्रहण न करना चाहिये। यदि विदेशियों के स्पर्श व देखने से भी पाप मानेंगे, तो उनसे प्रसंग उपस्थित होने पर युद्ध भी कैसे कर सकेंगे।

सार यह है कि धर्म हमारे आत्मा और कर्तव्य के साथ है। जब हम अच्छे काम करते हैं तो हमको देशान्तर व द्वीप-द्वीपान्तर में जाने में कुछ भी दोष नहीं लग सकता। हां, इतना अवश्य चाहिये कि वेदोक्त धर्म का निश्चय और पाखण्ड मत का खण्डन करना अवश्य सीख लें जिससे कोई हम को झूठा निश्चय न करा सके। क्या बिना देशदेशान्तर व द्वीप-द्वीपान्तर में राज्य व व्यापार किये स्वदेश की उन्नति कभी हो सकती है?

चौका :—विदेशयात्रा के समान ही भोजन के चौके में ही खाने की बात भी है। राज-पुरुष युद्ध के समय भी चौका लगाकर रसोई बना के खाते रहे तो पराजित हो तो होंगे। क्षत्रिय लोगों का युद्ध में एक हाथ से रोटी खाते व जल पीते जाना और दूसरे हाथ से शत्रुओं को घोड़े,हाथी, रथ पर चढ़ व पैदल होके मारते जाना अपना विजय करना ही आचार और पराजित होना अनाचार है। इसी मूढ़ता से इन लोगों ने चौका लगाते २ देश को ही चौका लगा कर नष्ट कर दिया है। यह तो ठीक है कि जहां भोजन करें उस स्थान को पवित्र करने का प्रयत्न किया जाय। भोजन का स्थान अपवित्र होना स्वास्थ्य के लिये हानिकर है ही।

सखरी व निखरी :—जल में गूंध कर पकाये गये अन्न को सखरी व

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
कच्चा भोजन तथा दूध के पकाये गये को निखरी व पक्का भोजन मानना भी प्रपञ्च मात्र ही है। अग्नि व काल से पका हुआ पदार्थ ही पक्का और न पका हुआ कच्चा है।

अपने ही हाथ से पकाना :—द्विज लोग अपने पढ़ने-पढ़ाने, राज्यपालन व पशुपालन, व्यापार आदि कर्मों में समय को लगायें और शूद्र रोटी पकाना आदि कर्म करें। इनके हाथ के बने भोजन को खाने में पाप नहीं लगता। आपस्तम्ब ऋषि कहते हैं कि **'आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः'** आर्यों के घरों में शूद्र अर्थात् अपठित स्त्री पुरुष पाकादि सेवा करें। यह ध्यान कर लेना चाहिये कि वे शरीर वस्त्र आदि से पवित्र रहें। मुख पर पट्टी बांध के भोजन बनायें ताकि मुख से किसी प्रकार का उच्छिष्ट अन्न में न पड़े। शूद्र के हाथ का छुए हुए अन्न के खाने में दोष नहीं लगता। हां, इनके पात्रों में व इनके घर का पका हुआ अन्न आपत्काल के विना न खावें।

मद्य मांसाहारियों के हाथ के खाने में आर्यों को भी मद्यमांस आदि खाना-पीना अपराध पीछे लग पड़ता है, सो इनके हाथ का व इनके साथ खान-पान ठीक नहीं। आर्यों का परस्पर एक भोजन होने में कोई दोष नहीं। खान-पान में भी भेदभाव होने से उन्नति का संभव नहीं। यह छूतछात का रोग हमें उन्नत न होने देगा।

भक्ष्याभक्ष्य :– धर्मशास्त्र में स्पष्ट कहा है कि ब्राह्मण क्षत्रिय व वैश्य को मलिन विष्ठा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुए २ शाक फल मूल आदि न खाने चाहियें। (**अभक्ष्याणि द्विजातीममेध्य प्रभवाणि च**। मद्य मांस आदि तथा बुद्धि को नष्ट करने वाले पदार्थों का सेवन कभी न करें (**वर्जयेन्मधु मांसं च ; बुद्धिं लुम्पति यद् द्रव्यं मदकारी तदुच्यते**) गौ आदि उपकारक पशुओं को मारने वालों को सब मनुष्यों की हत्या करने वाला जानना चाहिये। **पयः पशूनां** इस यजुर्मंत्र के अनुसार इन पशुओं से दूध ही लेना है, इनको मार कर इनका मांस नहीं खाना।

मांस :—राजपुरुषों का यह कर्तव्य अवश्य है कि जो हानिकारक पशु व मनुष्य हों उनको दण्ड देवें और प्राण से भी विमुक्त कर दें। इन मृत,व्याघ्र,मृग आदि के मांस को फेंक दें व जला दें। कूड़े-कर्कट को फेंक व जला ही दिया जाता है। अथवा यह मांस कुत्ते आदि मांसाहारियों को खिला देवें। अथवा कोई मांसाहारी खावे तो भी संसार की कुछ हानि नहीं होती, किन्तु उस

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

मनुष्य का स्वभाव मांसाहारी हो कर हिंसक हो सकता है। इसलिये जितना हिंसा और चोरी, विश्वासघात, छल, कपट आदि से पदार्थों को प्राप्त होकर भोग करना है वह अभक्ष्य, और अहिंसा धर्मादि कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है,जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, रोगनाश, बुद्धि,बल, पराक्रम वृद्धि और आयुवृद्धि होवे उन तण्डुल (चावल) आदि पदार्थों का समय पर मिताहार करना ही 'भक्ष्य' है। एक ही थाली में मिलकर खाना अस्वास्थ्य का हेतु हो सकने से ठीक नहीं है **'नोच्छिष्टं कस्याश्चिद् दद्यात्'** किसी को अपना जूठा पदार्थ न दें। **'गुरोरुच्छिष्टभोजनम्'** का भाव केवल इतना ही है कि गुरु को प्रथम भोजन कराके पश्चात् शिष्य को भोजन करना चाहिये।

शहद व दूधः—शहद मधुमक्षिका बनाती हैं। प्रभु ने ऐसी व्यवस्था की है कि मक्षिका के मुख में उच्छिष्ट करने वाले स्राव को नहीं रखा। दूध भी दोहने के समय बछड़ा स्तन के बाह्य भाग को ही मुख में लेता है, सो बछड़े के पी लेने पर स्तन को धोकर फिर दोहना ही ठीक है। पति-पत्नी भी एक दूसरे का उच्छिष्ट न खायें। भोजनालय सदा पवित्र हो। भोजन के समय मन में किसी प्रकार की अप्रसन्नता न हो।

अन्तिम चार समुल्लास

यहां आचारानाचार व भक्ष्याभक्ष्य का विषय समाप्त होता है। अगले चार समुल्लासों में मुख्यतया खण्डन-मण्डन का विषय है। सर्वप्रथम आर्यावर्तीय मत मतान्तरों की आलोचना की गयी है। बाहरवें में जैन धर्म की अलोचना कुछ विस्तार से है। फिर ईसाईयों और अन्त में मुसल्मानों के मतमतान्तरों का खण्डन हुआ है। जो कोई विशेष खण्डन मण्डन देखना चाहे वह इन चारों समुल्लासों में देखे। परन्तु सामान्य करके कहीं२ दश समुल्लासों में भी कुछ थोड़ा सा खण्डन-मण्डन किया ही है। जो भी पक्षपात छोड़ न्याय दृष्टी से इन्हें देखेगा उसके आत्मा में सत्य अर्थ का प्रकाश हो कर आनन्द होगा ही। हठ-दुराग्रह व ईर्ष्या के होने पर इस ग्रन्थ का अभिप्रायः यथार्थ विदित होना बहुत कठिन है। विद्वानों का यही काम है कि सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण व असत्य का त्याग करके परम आनन्दित होते हैं। ऐसे गुणग्राहक पुरुष ही विद्वान् होकर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप फलों को प्राप्त होकर प्रसन्न रहते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अवैदिक-मत-खंडन

सत्यार्थप्रकाश के उत्तरार्द्ध के चारों समुल्लासों का सार

अवैदिक आचार्य और नास्तिक मतों की समीक्षा

लेखक
श्री दीनानाथ सिद्धान्तालंकार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

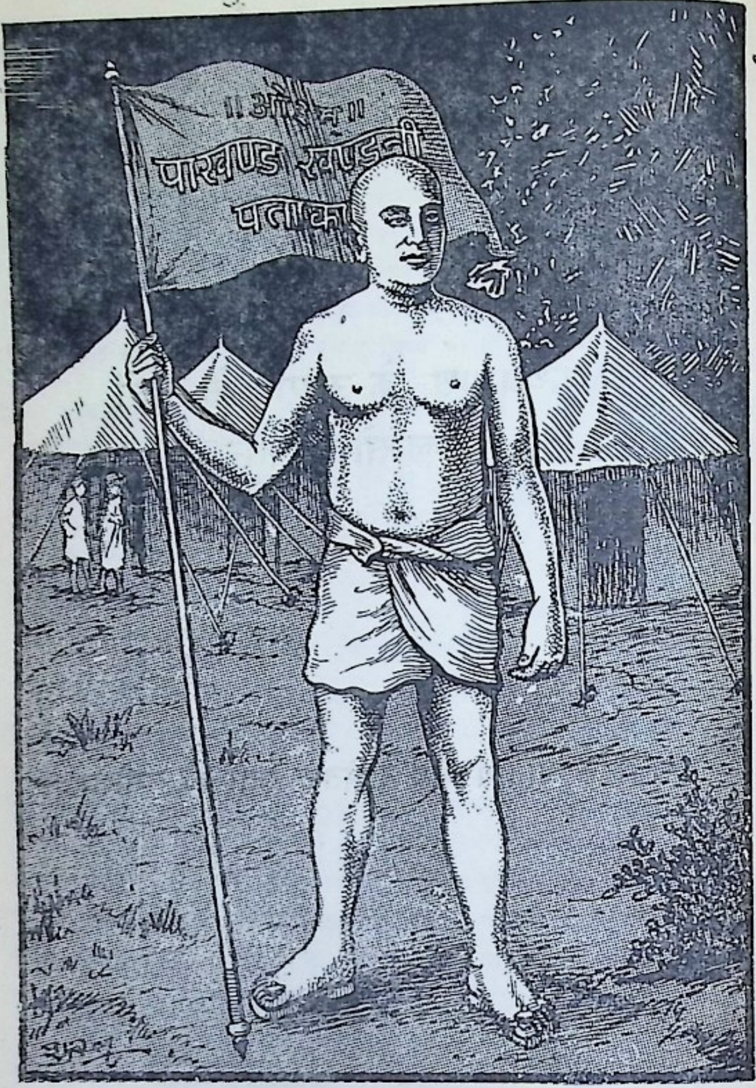

पाखंड खंडिनी पताका उठाए हुए,

महर्षि दयानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ग्यारहवें समुल्लास
के आधार पर

ग्यारह

खंडन का उद्देश्य

यह आक्षेप प्रायः किया जाता है कि महर्षि दयानन्द ने बड़ी कड़ी भाषा में अन्य मतों का खँडन किया है। इस प्रकार के खँडन से विभिन्न सम्प्रदायों के अनुयायियों की भावनाओं को ठेस पहुँचती है—यह युक्ति प्रबलता से दी जाती है। परन्तु, महर्षि के हृदय में किसी के प्रति—यहाँ तक कि अपने कट्टर विरोधियों और विष देने वालों के प्रति भी—रँचमात्र भी द्वेष और विरोध की भावना नहीं थी। उनके हृदय की एकमात्र भावना सत्य-असत्य का निर्णय करना ही था। सत्यार्थप्रकाश के दश समुल्लासों में स्वामी दयानन्द ने वैदिक धर्म के स्वरूप का, वेद शास्त्र और अन्य आप्त ग्रन्थों के आधार पर, मँडनात्मक पद्धति से विशद वर्णन किया है। ११, १२, १३, १४—इन चारों समुल्लासों को ऋषि ने "उत्तरार्द्ध" की संज्ञा दी है। खंडनात्मक इन चारों समुल्लासों के पीछे स्वामी जी के मन में क्या भावना काम करती थी, यह उत्तरार्द्ध के प्रारम्भ में लिखी गई "अनुभूमिका" के निम्न शब्दों से सर्वथा स्पष्ट है :—

"जो जो इसमें सत्य के मत का मँडन और असत्य का खँडन लिखा है, वह सबको जनाना ही प्रयोजन समझा गया है। ·········पक्षपात छोड़कर इसको देखने से सत्यासत्य मत सबको विदित हो जाएगा। पश्चात् सबको अपनी-अपनी समझ के अनुसार सत्य मत का ग्रहण करना और असत्य का छोड़ना सहज होगा।········ ···मेरा तात्पर्य किसी की हानि व विरोध करने में नहीं, किन्तु सत्यासत्य का निर्णय करने कराने का है।"

इसी प्रसंग में ऋषि के निम्न शब्द उन की आन्तरिक भावना का कितना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
निश्चयात्मक और दृढ़ परिचय देते हैं—:

"मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिए है न कि वाद-विदाद विरोध करने कराने के लिए। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत् में जो जो अनिष्ट हुए, होते हैं और होंगे, उनको पक्षपात रहित विद्वज्जन जान सकते हैं। जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्ध वाद न छूटेगा, तब तक अन्योऽन्य को आनन्द न होगा।"

विद्वज्जनों पर विशेष दायित्व

मतमतान्तारों के इस पारस्परिक वैर-विरोध का उन्मूलन करने का विशेष दायित्व विद्वानों पर हैं। स्वामी दयानन्द जी के शब्दों में :—

"यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वज्जन ईर्ष्या द्वेष छोड़ सत्यासत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्यका त्याग करना कराना चाहें तो हमारे लिए यह बात असाध्य नहीं है।"

स्वामी दयानन्द की इस सर्वहित कामना को यदि हम दृष्टि मे रखें, तो इस ११ वें समुल्लास में आर्यवर्तीय मतमतान्तरों की समीक्षा, प्रकट रूप में कटु होते हुए भी, अन्ततः सत्य सिद्धान्त तक पहुंचने में अत्यन्त सहायक और लाभप्रद सिद्ध होगी।

इस समुल्लास में, प्रधानतः २६ मतवादों की समीक्षा की गयी है। इन में से प्रत्येक मत का महर्षि दयानन्द ने जिन युक्तियों के आधार पर खँडन किया है, संक्षेप से, हम यहाँ उन्हें उपस्थित करेंगे।

प्राचीन भारत का गौरवमय इतिहास

इस देश के प्राचीन गौरव और अखँड साम्राज्य तथा इसके अधः पतन के सम्बन्ध में महर्षि इस समुल्लास के प्रारम्भ में ही कहते हैं :—

"यह आर्यावर्त्त देश ऐसा है जिसके सदृश भूगोल में दूसरा कोई देश नहीं है, इसीलिए इस भूमि का नाम सुवर्ण भूमि है क्योंकि यही सुवर्णादि रत्नों को उत्पन्न करती है। इसीलिए सृष्टि के आदि में आर्य लोग इसी देश में आकर बसे।········· जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं। पारस मणि पत्थर सुना जाता है, वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारस मणि है कि जिसको लोहे रूप

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

दरिद्र विदेशी छूते के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढय हो जाते हैं।

'............स्वायंभव राजा से लेकर पाण्डव पर्यन्त आर्यों का चक्रवर्ती राज्य रहा। तत्पश्चात् आपस के विरोध से लड़कर नष्ट हो गये क्योंकि इस परमात्मा की सृष्टि में अभिमानी, अन्यायकारी, अविद्वान् लोगों का राज्य बहुत दिन नहीं चलता। और यह संसार की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि जब बहुत सा धन असंख्य प्रयोजन से अधिक होता है, तब आलस्य, पुरुषार्थ-रहितता, ईर्ष्या, द्वेष, विषयासक्ति, और प्रमाद बढ़ता है। इससे देश में विद्या, सुशिक्षा नष्ट होकर दुर्गुण और दुष्ट व्यसन बढ़ जाते हैं, जैसे कि मद्यमाँस सेवन बाल्यावस्था में विवाह, और स्वेच्छाचारादि दोष बढ़ जाते हैं।........ जब ये दोष हो जाते हैं तब आपस में विरोध होकर अथवा उनसे अधिक दूसरे छोटे कुलों से कोई ऐसा समर्थ पुरुष खड़ा होता है कि उनका पराजय करने में समर्थ होवे ....।"

(१) वाममार्ग

महाभारत के युद्ध से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व इस देश में आलस्य, प्रमाद, ईर्ष्या, द्वेष के अंकुर कुछ कुछ उगने शुरू हो गये थे। एक समय ऐसा आ गया जब पोप, पाखंडी, वेषधारी साधु और केवल जन्माभिमानी ब्राह्मण अन्य वर्ण के व्यक्तियों को शिक्षा के अधिकार से वंचित कर अपनी ही पूजा कराने लगे। इसके परिणाम स्वरूप, "प्रमाद और विषयासक्ति में फँसकर विद्या, बल, बुद्धि, पराक्रम, शूरवीरता आदि शुभ गुण नष्ट होने लगे। फिर "विषयासक्त हो माँस-मद्यका सेवन गुप्त रूप से करने लगे।"

इन्हीं में से वाममार्ग का प्रादुर्भाव हुआ। इस मत में पँचमकार, अर्थात् मद्य, माँस, मीन, मुद्रा (योनि) और मैथुन को सर्वश्रेष्ठ माना गया, किसी भी पुरुष को शिव और किसी भी स्त्री को पार्वती मान कर परस्पर समागम करने में वाममार्ग दोष नहीं मानता, नीच कुलोत्पन्न स्त्रियों को और रजस्वला आदि अस्पृश्य स्त्रियों को इस मत में अति पवित्र माना गया है। "रजस्वला स्त्री के साथ समागम करने से पुष्कर का स्थान, चांडाली के समागम से काशी की यात्रा, चमारी के समागम करने से प्रयागस्नन, धोबी की स्त्री के साथ समागम करने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से मथुरा यात्रा, और कंजरी के साथ लीला करने से अयोध्या तीर्थ यात्रा के पुण्य माने गये हैं। मद्य का नाम "तीर्थ", मांस का नाम "शुद्धि" और "पुष्प, मछली का नाम "तृतीया" "जलतुम्बिका" मुद्रा का नाम "चतुर्थी" और "मैथुन" का नाम "पंचम"—इस मत में माना गया है ताकि अन्य कोई व्यक्ति समझ न सके। अपने को "कौल, आदि वीर, शाम्भव और गण आदि" नामों से पुकारते हैं। जो "वाममार्ग मत में नहीं हैं उनके "कंटक" "विमुख" "शुष्क पशु" आदि नाम रखे हैं। वाममार्गी स्त्री-पुरुष जब इकट्ठे होते हैं तब उसे "भरैवी चक्र" कहते हैं और वहां पर माता, भगिनी, कन्या, पुत्र वधू इत्यादि के भेद भाव के बिना सब नंगे हो गुप्त अंगों की पूजा, मद्य पान और व्यभिचार इत्यादि करते है। जब किसी को वमन हो जाता है, तब उसे भी खा लेने वाला अघोरी सब से बड़ा सिद्ध माना जाता है। यज्ञ में मांस की आहुति देने और उसके भक्षण को पुण्य मानते हैं।

वाममार्गियों ने ऋषि ग्रन्थों में खूब मिलावट की और साथ ही किसो ऋषि के नाम पर हिंसा और मद्य मांस भक्षण के वचन बना डाले। अश्वमेध, गोमेध नरमेध, शब्दों का उलटा अर्थ कर यज्ञ में अश्व, गौ, मनुष्य आदि को मारकर आहुति डालने का प्रचार किया। वास्तुतः इन तीनों यज्ञों का प्रभिप्राय, क्रमशः, राष्ट्र रक्षा, इन्द्रियों का संयम और मृत व्यक्ति के शरीर का विधिपूर्वक अग्नि दाह करना—ये हैं। वाममार्गियों ने यज्ञों की आड़ में हिंसा का खूब प्रचार किया।

(२) चारवाक मत

वाममार्ग के शाखारूप चारवाक मत प्रारम्भ हुआ। इसका सिद्धान्त था कि यदि यज्ञ में पशु हत्या से स्वर्ग मिलता है, तो यजमान अपने पिता आदि को मार कर स्वर्ग में क्यों नहीं भेज देता ? यदि मृत व्यक्ति की हिंसा के लिए श्राद्ध और तर्पण हो सकता है तो विदेश जाने वाले को मार्ग के लिए भोजन बांधकर देना व्यर्थ है।

जैन और बौद्ध मत यहीं से प्रारम्भ हुए। पाषाणादि की पूजा जैनियों से प्रारम्भ हुई।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(३) नवीन वेदान्त

सारे देश में जैन मत का प्राबल्य हो गया। इस समय शंकराचार्य का आविर्भाव हुआ। उन्होंने उज्जैन में जैन मतावलम्बी राजा सुधन्वा को प्रेरणा देकर जैन पंडितों से शास्त्रार्थ का आयोजन कराया। शास्त्रार्थ कई दिन तक होता रहा। जैनी हार गये। राजा की ओर से शंकराचार्य के समस्त देश भ्रमण और प्रचार की व्यवस्था की गयी। शंकर ने देश के चारों कोनों में प्रचार के लिए चार मठों की भी स्थापना की, दक्षिण में शृंगेरी, पूर्व में जगन्ननाथ पुरी, उत्तर में (वद्रीनाथ) जोशी मठ और पश्चिम (द्वारका) में शारदा मठ। शंकर के दो शिष्यों ने—जो वस्तुतः जैनी थे पर छद्म रूप में शिष्य थे—आचार्य को विष दे दिया, जिससे शंकर की मृत्यु हो गयी। शंकराचार्य लगभग १० वर्ष तक ही कार्य कर सके।

शंकर के नवीन वेदान्त के सिद्धान्त, मुख्यतः, निम्न हैं :—

(१) जीव और ब्रह्म एक हैं और जगत् मिथ्या है।

(२) अध्यास, अध्यारोप और अपवाद से प्रपंच रहित ब्रह्म में प्रपंचरूप जगत् का विस्तार है।

(३) रज्जू में सर्पवत ब्रह्म में जगत् की मिथ्या प्रतीति होती है और ब्रह्म के साक्षात्कार होने से जगत् की निवृत्ति और ब्रह्म की प्रतीति हो जाती है।

(४) ब्रह्म में जगत् का भान जीव को अज्ञान से होता है।

(५) ब्रह्म को ब्रह्म का अज्ञान, अर्थात्, अपने स्वरूप का अज्ञान, चिदाभास के कारण होता है।

(६) जैसे आकाश, वस्तुतः, एक ही हैं पर घट, मठ, मेघ आदि की उपाधि से भिन्न-भिन्न प्रतीत होता है, इसी प्रकार माया, अविद्या, समष्टि, व्यष्टि और अन्तःकरणों की उपाधि से ब्रह्म अज्ञानियों को पृथक्-पृथक् प्रतीत हो रहा है, वस्तुतः वह एक ही है। अन्तःकरण में ब्रह्म का आभास "चिदाभास" कहा जाता है। अन्तःकरण में रहते जीव उसमें हैं। अन्तःकरण रूपी उपाधि के ज्ञान द्वारा नष्ट हो जाने पर जीव ब्रह्मरूप हो जाता है।

शंकराचार्य का यह मत सर्वथा वेद विरुद्ध हैं क्योंकि जो वस्तु नहीं, उसका

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

भास होना सर्वथा असम्भव है, जैसे, वन्ध्या में पुत्र का प्रतिबिम्ब कभी नहीं हो सकता। यहकहना कि चेतन होने से जीव ब्रह्म से अभिन्न है, एकदम अशुद्ध है। साधर्म्यमात्र से एक दूसरे के साथ एकता नहीं होती, वैधर्म्य भेदक होता है। जैसे कोई कहे कि जड़ के होने से पृथिवी जल से अभिन्न है, परन्तु गन्धवत्व, कठिनत्व आदि भूमि के धर्म जल के रसवत्व, द्रव्यादि से भिन्न होने के कारण पृथिवी और जल एक नहीं हैं, इसी प्रकार जीव और ब्रह्म के वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म कभी एक नहीं हो सकते। व्यास जी ने वेदान्त दर्शन के अध्याय ४, पाद ४, सूत्र १, ५, ६, ७, ९ तथा अध्याय प्रथम, पाद १ के सूत्र १५, १७, १६, २२, २८, २१ और १/२/११, १/२/३, १/२/१८, १/२/२० इत्यादि के द्वारा इसी सिद्धान्त की पुष्टि की है।

तीन पौराणिक मत

महाराजा विक्रमादित्य के काल में शैव मत का जोर बढ़ गया। शंकराचार्य को शिव का अवतार मान लिया गया। उनके अनुयायी भी शैव मत में प्रवृत्त हो गये। वाममार्गी, और शैव दोनों रुद्राक्ष माला और भस्म धारण करते हैं। राजा भोज के पश्चात् जैनियों का बल फिर बढ़ने लगा। उनके मन्दिरों में मूर्ति स्थापन करने, दर्शन और स्पर्श के लिए लोग जाने लगे, तब पौराणिक भी अपनी ओर जनता को आकृष्ट करने के लिए मूर्ति स्थापन करने लगे तथा दर्शन स्पर्शन के लिए जनता को प्रेरित करने लगे। राजा भोज के समय ही व्यास जी के नाम से मार्कण्डेय और शिव पुराण तथा अन्य पुराणों की रचना होने लगी। महाभारत के ४४०० श्लोक बढ़ कर राजा भोज के समय तक ३० सहस्रतक हो गये थे। ऋषि-मुनियों के नाम से पुराण आदि बनाये गये।

राजा भोज के पश्चात् वैष्णव मत का प्रारम्भ हुआ। वस्तुतः ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इत्यादि ईश्वर के ही नाम हैं। वैष्णव अपने शरीर पर शंख, चक्र, गदा, पद्म के चिन्ह गर्म लोहे से दाग लेते हैं और माथे पर तिलक तथा गले में कण्ठी धारण करते हैं। इन चिन्हों से परमेश्वर प्राप्ति की युक्ति दी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जाती है। इनकी दलील यह है कि जिस प्रकार सरकार की पेटी कमर में बाँध लेने अथवा सिर पर लाल पगड़ी देखकर सिपाही से सामान्य लोग डरते हैं, इसी प्रकार शंख, चक्रादि चिन्हों को देखकर यमराज और उसके दूत भी डरने लगते हैं। वाममार्गियों के पंच मकार की तरह चक्रांकित वैष्णवों के भी पाँच चिन्ह हैं, वाजा, तिलक, छाप, माला और नाम, अर्थात्, दास शब्दान्त नाम रखना, जैसे, नारायणदास, विष्णुदास इत्यादि। ऋग्वेद ९/८३ के मन्त्र १ और २ में आये शब्द "अतप्ततनुः और "तपोष्पवित्रं" इन दो शब्दों से वे शरीर पर शंख, चक्र या दाग लगाने का समर्थन करते हैं। पर, तप का वास्तविक अर्थ शरीर, इन्द्रिय और मन से शुभ आचरण करना है, किसी धातु से चमड़ी को तपाना नहीं हैं। अगर अग्नि से कुछ अंगों को तपाने और दागने से ही मुक्ति मिलती हो तो सारे शरीर को ही जला देने से शीघ्र मुक्ति मिल सकती है।

(८, ९) नाम स्मरण और मूर्ति पूजा

मूर्ति पूजा का प्रारम्भ जैनियों से हुआ। जैनियों की मूर्तियाँ नंगी ध्यानावस्थित और विरक्त मनुष्य सदृश हैं। शैव-वैष्णवों ने, इसके विपरीत, शृंगारित स्त्री सहित, रंग-राग-भोग विषयासक्ति पूर्ण खड़ी या बैठी मूर्तियाँ बनायीं। जैनी शंख, घंटा, घड़ियाल नहीं बजाते, वैष्णवादि खूब कोलाहल करते हैं।

जब परमेश्वर निराकार और सर्वव्यापक हैं तब उसकी मूर्ति कैसे बन सकती है? अगर मूर्ति के दर्शन मात्र से परमेश्वर का ध्यान हो सकता है तो क्या पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, पर्वत इत्यादि ईश्वर रचित सृष्टि को देखकर परमात्मा का स्मरण नहीं हो सकता? मनुष्य रचित पाषाण और मिट्टी रचित मूर्तियों से तो यह प्राकृतिक विश्व की मूर्ति तो बहुत सुन्दर और महान् हैं। अगर मूर्ति देखने से ही परमेश्वर का स्मरण होता है, तब उसके अभाव से मनुष्य में पाप प्रवृत्त हो जाएगा। परमेश्वर को सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, निराकार मानने से ही पाप से बच सकता है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

नाम स्मरण मात्र से भी कुछ फल नहीं मिलता। केवल मिश्री-मिश्री अथवा नीम-नीम कहने से मुँह मीठा अथवा कड़ुआ नहीं हो जाता। वास्तविक नाम-स्मरण इसी में है कि परमात्मा के गुणों का स्मरण कर तदनुसार अपने जीवन का निर्माण किया जाए।

मूर्ति पूजा के पक्ष में कुछ हेत्वाभास

जब परमेश्वर सर्वत्र है तब मूर्ति में भी है, इसलिए मूर्ति पूजा की जाए—यह युक्ति भी निरर्थक है। यह तो वैसे ही है जैसे एक चक्रवर्ती राजा को राज्य सत्ता से छुड़ाकर एक झोंपड़ी में बैठा देना। फिर उस सर्वव्यापक के सम्मुख घंटा, घड़ियाल बजाना, पुष्प, नैवेद्य, भोग आदि लगाना ईश्वर का अपमान करना ही है। "जैसी जिसकी भावना, वैसा ही फल"—यह भी तर्कसंगत नहीं है। क्या मिट्टी में सोने की भावना और विष में अमृत की भावना की जा सकती है ? क्या अन्धा अपने में नेत्र की भावना से देखने योग्य हो जाता है ? न मरने की भावना से क्या मरने से छुटकारा पाया जा सकता है ? देवताओं का आवाहन करने से मूर्ति में चेतनता आ जाती है—यह युक्ति भी आधारहीन है। देवता आ जाने से मूर्ति चेतन हो जानी चाहिए। जब मूर्ति का विसर्जन होता है, तब क्या देवता चला जाता है ? भला बताओ, वह कहाँ जाता है और कहाँ से आया था ? मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा का कोई मंत्र वेद में नहीं है। अगर मूर्ति पूजा का वेदों में विधान नहीं तो निषेध भी नहीं, इसलिए मूर्ति पूजन किया जा सकता है—यह सारहीन युक्ति है। वेदों में अनेक मन्त्र ऐसे हैं जिनमें मूर्ति पूजा का निषेध है। यजु० ३२/३ का मन्त्र है—

न तस्य प्रतिमा अस्ति

उस परमात्मा की कोई मूर्ति नहीं है। यजु० ४०/६ और केन तथा अन्य उपनिषदों में भी ईश्वर को निराकार ही कहा गया है।

यह युक्ति कि अगर मूर्ति पूजा पुण्य नहीं तो पाप भी नहीं और मूर्ति पूजा अज्ञानियों के लिए पहली सीढ़ी के समान है—निरर्थक है। वेदविहित का अनुष्ठान ही पुण्य और उसका पालन न करना ही पाप है। जब मूर्ति पूजा वेद निषिद्ध है, तब उसका करना पाप ही है। मूर्ति पूजा सीढ़ी के सदृश नहीं,

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वस्तुतः एक खाई के सदृश है। सीढ़ियाँ तो यम-नियमादि का पालन, विद्वान् योगियों का सत्संग, स्वाध्याय इत्यादि हैं। मूर्ति पूजा करने से कोई ज्ञानी नहीं हुआ, अपितु आजन्म अज्ञानी रहकर मानुष जन्म व्यर्थ ही गंवाया। यह युक्ति कि मन साकार में स्थित हो सकता है, निराकार में नहीं—सर्वथा अशुद्ध है। स्थिति इसके विपरीत है। साकार में मन कभी स्थिर हो ही नहीं सकता क्योंकि वह उसके अवयवों में ही दौड़ता रहता है। निराकार ईश्वर की ओर यावत् सामर्थ्य दौड़ता हुआ भी अन्त नहीं पाता, चंचलता दूर होती है और विशालता के ध्यान में मगन हो आनन्दित हो जाता है। अगर साकार में ही मन स्थिर होता हो तो अपने स्त्री-पुत्र, धन-सम्पत्ति, मित्र आदि में ही क्यों न लगावें।

मूर्ति पूजा से १५ हानियाँ

मूर्ति-पूजा से, ऊपर कही गयी हानियों के अतिरिक्त, १५ हानियाँ अन्य होती हैं, जैसे (१) मन्दिरों पर करोड़ों रुपयों का व्यय, (२) स्त्री-पुरुषों के मेल से व्यभिचार, कलह, रोग आदि (३) पुरुषार्थहीन जीवन हो जाना (४) विरुद्ध स्वरूप मूर्तियों के पुजारियों द्वारा आपसी फूट की वृद्धि (५) शत्रु की पराजय और अपनी विजय के लिए मूर्ति पर ही निर्भर करना (६) परमेश्वर की उपासना के स्थान हृदय की उपेक्षा कर पाषाण पूजन से बुद्धिनाश (७) एक मन्दिर से दूसरे मन्दिर की यात्रा करते-करते धन और समय का नाश तथा ठगों के शिकार होना (८) मन्दिरों के पुजारियों द्वारा धन का विषय भोग में दुरुपयोग (९) माता-पिता आदि की उपेक्षा कर पाषाण मूर्तियों का सम्मान जिससे कृतघ्नता का पाप (१०) मूर्तियों की चोरी और भंग किया जाना जिससे क्षोभ (११) पुजारी वर्ग में व्यभिचार की वृद्धि (१२) स्वामी स्वरूप ईश्वर की आज्ञा का सेवक रूप आत्मा द्वारा न पालने से विरोध भाव (१३) जड़ का निरन्तर ध्यान करने से आत्मा में जड़ बुद्धि (१४) आकाश और वातावरण को अपनी सुगन्ध से शुद्ध करने वाले पुष्पों का भारी विनाश (१५) मूर्ति पर चढ़ाए गए पुष्प, चन्दन, दूध इत्यादि का मोरी में बहकर सड़ांद और रोग पैदा करना।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

पंचायतन पूजा का अभिप्राय

पंचायतन पूजा का मतलब शिव, विष्णु, अम्बिका, गणेश और सूर्य का मूर्ति पूजन नहीं किन्तु माता, पिता, आचार्य, अतिथि की सेवा और प्राणी मात्र का हितचिन्तन—यह है। इन पाँचों की पूजा के साथ यदि मूर्ति पूजा भी करें तो क्या हानि है, इस शंका का उत्तर यही है कि सजीव पंचायतन पूजा तो लाभदायक है और फलप्रद है पर निरर्थक और व्यय साध्य तथा आडम्बरपूर्ण जड़ पाषाण पूजन केवल मात्र दुखवर्धक है।

काशी, कलकत्ता,गया, जगन्नाथपुरी, रामेश्वरम्, द्वारका, सोमनाथ, ज्वालामुखी, अमृतसर, हरिद्वार, कुरुक्षेत्र, उत्तरकाशी, गुप्तकाशी, विन्ध्याचल इत्यादि स्थानों में बने मन्दिरों और मूर्तियों के सम्बन्धों में प्रचलित कहानियाँ, चमत्कार, जादू इत्यादि केवल मात्र कपोल कल्पित, सृष्टि नियम विरुद्ध और बुद्धि शून्य है। धूर्त, पाखंडी और स्वार्थी लोगों ने अपने निजी लाभ तथा दूसरों को ठगने के लिए ही इन सब का प्रचार किया हैं। इनके जाल में नहीं फँसना चाहिए।

(१०, ११) सच्चे तीर्थ और गुरु

जहाँ देवी देवताओं की पाषाण मूर्तियों के मन्दिर हैं, उन्हें तीर्थ बना दिया गया है और जहां तीर्थ हैं वहाँ ऐसी मूर्तियों की स्थापना के मन्दिर खड़े कर दिये गये हैं। दोनों पाखण्ड आपस में जुड़े हुए हैं। पुराणों में तो यहां तक कह गया दिया है कि सहस्त्रों कोस दूर से भी जो "गंगा गंगा" कह देता है "हरि' इन दो अक्षरों का नामोच्चारण कर लेता है, अथवा प्रातःकाल शिवलिंग का दर्शन कर लेता है, वह सब पापों से छूट जाता है। यह अपने आपको कितना बड़ा धोखा देना है। अगर यह ठीक मान लें तो संसार में कोई दुखी ही न रहे और पाप करने से कोई भी न डरे। पर, पाप का फल तो भोगना ही पड़ता है। सच्चे तीर्थ तो वेदादि सत्य शास्त्रों का पठन-पाठन धार्मिक पुरुषों का संग, धर्मानुष्ठान, योगाभ्यास, सत्यनिष्ठ जीवन इत्यादि शुभ गुण हैं। सृष्टिकर्त्ता होने

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
से ब्रह्मा, सर्वव्यापक होने से विष्णु, प्रलयकारी होने से शिव, ये सब नाम एक परमेश्वर के ही हैं और उस परमेश्वर के नामों का अर्थ जानकर उसके गुण, कर्म, स्वभाव के अनुकुल अपने गुण, कर्म, स्वभाव करते जाना ही परमेश्वर का नाम स्मरण है। गुरु भले ही लोभी, क्रोधी, मोही, पापी हो उसके पग धोके गंदा पानी पीना इत्यादी गुरु माहात्म्य की बातें स्वार्थियों ने बनायी हैं। ऐसे गुरु का त्याग ताड़न, दंड और प्राण हरण तक में भी कुछ दोष नहीं है। परमेश्वर ही सच्चा गुरु है, उसके तुल्य कोई नहीं है। सच्चा गुरु वही है जो आप दुख पावे पर जगत् का उपकार कभी न छोड़े।

(१२) पुराण व्यास कृत नहीं है

अठारह पुराणों का कर्त्ता व्यासजी को बताना एकदम मिथ्या है। व्यासमुनि तो वेदान्तदर्शन के रचियता और योग दर्शन के भाष्यकार तथा बड़े विद्वान् सत्यवादी धर्मात्मा योगी थे। इन पुराणों की रचना तो स्वार्थी, अविद्वान, पामरों की है। पुराणों में अधिकाँश मिथ्या है। घुणाक्षर न्याय से कही-कहीं सत्य भी है। जिस-जिस के नाम के पुराण हैं, जैसे शिव पुराण, विष्णु पुराण, देवी पुराण इत्यादि उस उसमें अपने नाम के देवी-देवता की स्तुति और शेष सबकी भयंकर निन्दा भरी पड़ी है। परस्पर विरुद्ध, अप्राकृतिक, सृष्टि नियम विरुद्ध और एकदम अविश्वसनीय गपोड़ों की भरमार है। भागवत बोपदेव का बनाया है और इसी के भाई जयदेव ने गीतगोविन्द बनाया है। भागवत में श्रीकृष्ण का इतिहास अत्यन्त गर्हित हैं। "महाभारत में इस महापुरुष का इतिहास अत्युत्तम है। श्रीकृष्ण का गुण, कर्म, स्वभाव और चरित्र, आप्त पुरुषों के सदृश है जिसमें कोई अधर्म का आचरण श्री कृष्णजी ने जन्म से मरण पर्यन्त बुरा काम कुछ भी किया हो, ऐसा नहीं लिखा और इस भागवत वाले ने अनुचित मनमाने दोष लगाये हैं।" "जो यह भागवत नहीं होता तो श्री कृष्ण के सदृश महात्माओं की झूठी निन्दा क्यों होती।"

जब वेद, स्मृति, शास्त्र समझने की बुद्धि नहीं रही और केवल स्त्री शूद्रों के लिए जिन्हें वेद पढ़ने सुनने का अधिकार नहीं—पुराण बनाये गये, यह मिथ्या युक्ति है। सामर्थ्य तो पढ़ने-पढ़ाने से ही होता है और वेद का अधिकार स्त्री-शूद्र सहित मनुष्य मात्र को है।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

(१३) फलित ज्योतिष का ढोंग

ग्रहों का फल और फलित ज्योतिष – यह भी पोपलीला हैं। सूर्य, चन्द्र, तारागण, नक्षत्र इत्यादि ग्रह कहे जाते हैं क्योंकि "जो ग्रहण करे" अर्थात् सूर्य, चन्द्र आदि अपनी किरणों द्वारा उष्णता, शीतलता का ग्रहण और प्रसार करते, तथा ऋतु अनुसार कालचक्र से सम्बद्ध होने से प्रकृति के अनुकूल सुख-दुख के निमित्त होते हैं। पर पोप अपना उल्लू सीधा करने के लिए यजमानों को डराते हैं और रोग, दुख, कष्ट का कारण बताकर पूजा पाठ, जप, दान द्वारा धन ऐंठते हैं। भला इनसे कोई पूछे कि अगर तुम्हारे कहने से दुख, रोग कष्ट टल जाते हों, तो तुम मंत्रशक्ति से स्वयं राजा व धनाड्य क्यों नहीं बन जाते? शत्रुओं को अपने वश में क्यों नहीं कर लेते? क्या तुम्हारा इन ग्रहों के साथ डाक-तार का सम्बन्ध है? इसी प्रकार ज्योतिष के सम्बन्ध में भी वास्तविकता यह है कि जहाँ तक गणित के अनुसार इन ग्रहों की गति का ज्ञान है वह तो मान्य है, पर जब इस गति को अनुकूल-प्रतिकूल फल प्राप्ति से जोड़ दिया जाता है तब वह कपोल कल्पित हो जाता है। सूर्य ग्रहण और चन्द्र ग्रहण का गणित विद्या से पहले जान लेना युक्तियुक्त है पर इन जड़तत्त्वों का प्रभाव चेतन मानव जीवन पर कुछ नहीं पड़ता। सुख, दुख, सम्पति-दरिद्रता, लाभ-हानि इत्यादि तो अपने कर्मानुसार ही होते हैं। अगर फलित ज्योतिष सत्य मान लिया जाय तो इन ग्रहों का प्रभाव विश्व के सब मानवों पर एक सदृश होना चाहिए, पर ऐसा होता नहीं है। भारत के ज्योतिषी जिस ग्रह को लाभदायक समझते हैं अमेरिका और यूरुप के फलित ज्योतिषी हानिकारक समझते हैं। फिर, इन ज्योतिषियों के घर में कोई रोग, क्लेश, अकाल मृत्यु वैधव्य, विधुरता इत्यादि नहीं होनी चाहिए क्योंकि इनकी संतानों के विवाह तो ग्रह पूजन के अनुसार ही होते हैं।

(१४, १५) वैतरणी नदी, दान, पुण्य, श्राद्ध

मृत व्यक्ति का आत्मा अपने कर्मानुसार ईश्वर की आज्ञा से फल भोगता है। मृत व्यक्ति की अच्छी गति के लिए और वैतरणी नदी पार करने के लिए दान, पुण्य, श्राद्ध, गोदान इत्यादि सब पोपलीला के गपोड़े हैं। मृतकों को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
पहुंचाने के बदले ये चीजें पोप जी के घर, उदर और हाथ में अवश्य पहुंचती है। वैतरणी के नाम पर प्राप्त गौ कसाई के घर चली जाती है। इसी प्रकार एकादशी आदि के व्रत भी एकदम पाखँड हैं। पोपजी कहते हैं कि सब पाप एकदशी के दिन अन्न में बसते हैं। क्या ये पाप पोपजी के अनुयायियों के लिए ही हैं, या पृथ्वी भर के इसाई, मुसलमान इत्यादि के लिए भी! अगर केवल हिन्दुओं के लिए ही हैं, तो ईश्वर बड़ा पक्षपाती हो जाएगा।

१६ से २४ आठ अवैदिक मत

वाममार्गी, शैव, वैष्णव अपने को साधु, सन्त, महात्मा कहने वाले तन पर भस्म रमाये, दिन रात नशे में चूर, एकदम मूर्ख और एक दूसरे को गाली देने वाले, स्वयं भिखमंगे और दूसरे को धन सम्पति, पुण्य दान आदि का दान करते हैं। भक्तपाल में ऐसी कथाएँ भरी पड़ी हैं जिनसे आजन्म पापी, डाकू और चोर का भी माथे पर कौए की वीठ से बने तिलक आदि का निशान बनने से ही मोक्ष पद के अधिकारी हो गये। कबीर पन्थी कान मूँदकर "अनहद" शब्द सुनते और मनकी वृति को "सुरति" कहते हैं। इसी को सुनना और इसमें ध्यान लगाने को ही परमेश्वर का ध्यान बतलाते हैं। क्या इस रक्तगति के शब्द को सुन लेने से ही प्रभु-प्राप्ति और मोक्ष पद मिल सकता है। सिख मत के संस्थापक नानक जी के विचार तो अच्छे थे पर विद्या कुछ नहीं जानते थे। केवल पंजाब के ग्रामों की भाषा ही जानते थे। उन्हें अपनी प्रख्याति और प्रतिष्ठा की इच्छा थी। उनके पद्यों में कहीं वेदों की स्तुति और कहीं निन्दा की है। उन के चेलों ने उनके जीवन के साथ कई असम्भव और जादू भरी घटनाएँ जोड़ दी हैं। वाममार्गियों के "पंचमकार" चक्रांकितों के "पंचचिन्ह" की तरह नानक जी और गुरु गोविन्द सिंह ने भी अपने अनुयायियों के लिए "पंचककार" अर्थात्, केश, कड़ा, कच्छा, कँघा और कृपाण निश्चित कर दिये। उस समय इनकी आवश्यकता थी पर आज इनकी कोई उपयोगिता नहीं है। मूर्ति पूजा के बदले सिख ग्रन्थ साहब का पूजन करते हैं। इन्होंने भोजन का बखेड़ा बड़ी मात्रा में हटा दिया है। अगर विषयासक्ति और दुरभिमान को हटा कर वेद का अनुकरण करें तो बहुत अच्छी बात होगी। दादू-पन्थी और रामस्नेही भी व्यक्ति पूजा के सम्प्रदाय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
हैं। दादू पन्थी "दादूराम" कहने से ही मुक्ति मानते हैं और रामस्नेही "राम राम" कहने मात्र से ही मोक्ष पद प्राप्ति मानते हैं। गोकुल गोसाइयों का "बल्लभ मत" वाममार्ग का विकृतरूप है। अपने को कृष्ण और दूसरी स्त्रियों को गोपी मानकर उनसे भोग करना अपना अधिकार समझते हैं। इन के मत में गोंसाई जी को चेलियों द्वारा सर्वार्पण करने से ही मोक्ष पद प्राप्त होता है। इसे "पुष्टि मार्ग" भी कहा जाता है क्यों कि इसमें खान-पान स्त्री संग के लिए यथेष्ट भोग की छूट है। वस्तुतः, यह पुष्टि मार्ग नहीं "कुष्ठि मार्ग" है। "स्वामी नारायण" मत भी कपट युक्त मत है बहकाने के लिए कहते हैं कि सहजानन्द स्वामी मुक्ति धाम को लेजाने के लिए सफेद घोड़े पर बैठ कर मन्दिर में रात को नित्य आते हैं, उनकी पूजा करने से ही कल्याण होगा। इनका मंत्र है "श्री कृष्ण शरणं मम"—श्री कृष्ण मेरी शरण हैं। इस प्रकार अपनी लीला करते हैं। "माध्व सम्प्रदाय" चक्रांकित सदृश ही है। रामानुजीय चक्रांकित एक बार अग्नि से दाग लगवाते हैं पर माध्व प्रतिवर्ष लगवाते हैं। चक्रांकित कपाल में पीली रेखा और माध्व काली रेखा लगाते हैं। "लिंगाङ्कित मत" चक्रांकित सदृश ही हैं। यदि इतना ही है कि चक्रांकित चक्र आदि से दाग लगवाते हैं और लिंगांकित अपने शरीर पर लिंग की आकृति सदृश दागे जाते हैं और महादेव के सदृश अन्य किसी को नहीं मानते लिंगांकित पाषाण का लिंग सोने अथवा चाँदी में मढ़वा के गले में डाल रखते हैं। जब पानी भी पीते हैं तब उसे दिखाकर ही पीते है। ब्राह्म समाज और

प्रार्थना समाज ईसाई मत के अनुकरण में बने हैं। खान-पान, विवाहादि के नियम भी ईसाई मत की नकल में हैं। अपने पूर्वजों की निन्दा और वेद को सर्वथा अमान्य इस मत में माना गया है।

आर्यावर्त्त देश में प्रचलित सम्प्रदायों का इस प्रकार यह संक्षिप्त वर्णन है।

जितने भूगोल में देश हैं वे सब इसी देश की प्रशंसा करते और आशा रखते हैं कि पारसमणि पत्थर सुना जाता है वह बात तो झूठी है, परन्तु आर्यावर्त्त देश ही सच्चा पारसमणि है कि जिसको लोहेरूप दरिद्र विदेशी छूने के साथ ही सुवर्ण अर्थात् धनाढ्य हो जाते हैं।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चारवाक बौद्ध और जैन मतों पर विचार

इस समुल्लास की अनुभूमिका में महर्षि लिखते हैं :—

जब आर्यावर्त्तस्थ मनुष्यों में सत्यासत्य का यथावत् निर्णय करने वाली वेद विद्या छूट कर अविद्या फैल के मतमतान्तर खड़े हुए, यहीं जैन आदि के विद्या विरुद्ध मत प्रचार का निमित्त हुआ।............यही सिद्ध होता है कि जैन, बौद्ध मत, शैव, शाक्तादि मतों के पीछे चले हैं।"

इस समुल्लास में जैन मत का विशेष रूप से खंडन किया गया है। इसमें महर्षि दयानन्द की क्या भावना है, निम्न वाक्यों से यह विशद हो जाती हैं :—

"इसमें जैनी लोगों को बुरा न मानना चाहिए। क्योंकि जो-जो हमने इनके मत विषय में लिखा है वह केवल सत्यासत्य के निर्णयार्थ है, न कि विरोध वा हानि करने के अर्थ। इस लेख को जब जैनी, बौद्ध या अन्य लोग देखेंगे, तब सब को सत्यासत्य के निर्णय में विचार और लेख करने का समय मिलेगा और बोध भी होगा। जब तक वादी प्रतिवादी होकर प्रीति से वाद वा लेख न किया जाए, तब तक सत्यासत्य का निर्णय नहीं हो सकता। जब विद्वान् लोगों में सत्यासत्यका निश्चय नहीं होता, तभी, अविद्वानों को महा अन्धकार में पड़कर बहुत दुःख उठाना पड़ता है।''

जैन— बौद्ध मत के खंडन में स्वामी जी को कितना परिश्रम करना पड़ा, यह उन्हीं के शब्दों में :—

"यह बौद्ध जैन मत का विषय बिना इनके अन्य मत वालों को अपूर्व लाभ और बोध कराने वाला होगा क्योंकि ये लोग अपने पुस्तकों को किसी अन्य मत वाले को देखने, पढ़ने या लिखने को भी नहीं देते। बड़े परिश्रम से मेरे और विशेष

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
आर्य समाज मुम्बई के अभी "सेठ सेवक लाल कृष्ण दास के पुरुषार्थ से ग्रन्थ प्राप्त हुए हैं............ । भला यह किन विद्वानों की बात है कि अपने मत के पुस्तक आप ही देखना और दूसरों को न दिखलाना ।"

चारवाक मत

इस मत का प्रवर्त्तक बृहस्पति नामक व्यक्ति था । इसका मत था कि जब सबको मरना ही है, तब जब तक जीवन है सुखपूर्वक जीओ, इस भस्म हुए शरीर की दोबारा प्राप्ति कहां हो सकती है? चारों भूतों के संयोग से जीवात्मा उत्पन्न होकर इन्हीं के वियोग से नष्ट हो जाता है, मृत्यु के बाद जीव नहीं रहता, जो दुःख संयुक्त सुख का त्याग करते हैं वे मूर्ख हैं, अग्नि होत्र, तीन वेद तीन दंड और भस्म लगाना बुद्धिहीन पुरुषों ने अपनी जीविका के लिए चलाये हैं, जो कहते हैं कि मृत्यु में जीव परलोक को जाता है, मिथ्या है, क्योंकि यदि ऐसा होता तो कुटुम्बियों के मोह से बद्ध होकर पुनः घर वापस क्यों नहीं आ जाता, तीनों वेदों के बनाने वाले भाँड, धूर्त, निशाचर हैं जर्फरी. तुर्फरी, इत्यादि पंडितों के ही वचन हैं, घोड़े के लिंग को यजमान की स्त्री ग्रहण करे और समागम करे, यजमान कन्या से हंसी मजाक करे इत्यादि ।

यजमान पत्नी का अश्व से समागम

यह चारवाक मत भी एक प्रकार से वाममार्ग का पोषक है । बिना चेतन शक्ति परमेश्वर के जड़ पदार्थ स्वभावतः मिलकर सृष्टि नहीं रच सकते । यदि जीवात्मा ही न हो तो सुख दुःख का भोक्ता कौन होगा ? शरीर तो बिना जीवन जड़ है । वह स्वयं कैसे भोग सकता है ? देह से निकल कर जीव स्थानान्तर और शरीरान्तर को प्राप्त होता है, उसे पूर्व जन्म तथा कुटुम्बादि का ज्ञान कुछ भी नहीं रहता, इसलिए घर वालों की इच्छा पर वापस नहीं आ सकता । वेद तो ईश्वरीय ज्ञान है । भांड, धूर्त्त, निशाचर तो महीधर सायण आदि टीकाकार हुए हैं जिन्होंने वाममार्गियों का अनुकरण कर कपोल कल्पित दुष्ट टीकाओं द्वारा वेद की पवित्रता नष्ट की है, अश्व के लिंग से समागम और यजमान कन्या से ठठ्ठा करना केवल पशुता का परिचय देना है, वेदों में मांस, मद्य व्यभिचार इत्यादि का तनिक भी विधान नहीं है । कठोर निषेध ही है, अगर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

जीव का पुनर्जन्म न हो तो संसार में इतनी विषमता और विभिन्नता क्यों है। जीवात्मा द्रष्टा है वह दृश्य कभी नहीं हो सकता है कर्ता के बिना प्रत्यक्ष नहीं हो सकता इसलिए जीवात्मा का अस्तित्व निःसन्देह है। "चारवाक" शब्द का अर्थ ही "जो बोलने में प्रगल्भ और विशेष रूप से वितंडावादी है। अगर चारवाक मत का ही प्रचार हो जाए तो मनुष्य और पशु में कोई भेद नहीं रहेगा। मनुष्य पशु से भी अधिक नीच और पतित हो जाएगा।

बौद्ध मत

बौद्ध चार प्रकार के हैं—(१) माध्यमिक (२) योगाचार (३) सौत्रान्तिक और (४) वैभाषिक। इनमें से प्रत्येक की विचारधारा इस प्रकार है—(१) माध्यमिक सर्वशून्य मानता है, अर्थात् जितने पदार्थ हैं वे आदि में नहीं होते, अन्त में नहीं होते, मध्य में जो प्रतीत होते हैं वह भी शून्य रूप हैं। (२) योगाचार, अर्थात्, पदार्थ भीतर ज्ञान में रहते हैं, बाहर नहीं। (३) सौत्रान्तिक, बाहर कोई पदार्थ साँगोपाँग प्रत्यक्ष नहीं होता, केवल एक अंश प्रत्यक्ष होने से शेष का अनुमान किया जाता है (४) वैभाषिक, पदार्थ का प्रत्यक्ष बाहर होता है भीतर नहीं।

शून्यवाद की निरर्थकता

तर्क की दृष्टि से ये चारों स्थापनाएं टिक नहीं सकती हैं। (२) अगर सब शून्य हों तो शून्य का जानने वाला शून्य नहीं हो सकता, यदि सब शून्य हों तो शून्य को शून्य नहीं जान सकता। इसलिए शून्य का ज्ञाता और ज्ञेय—दो पदार्थ सिद्ध होते हैं। (२) योगाचार का बाह्य शून्यत्व और भीतर का ज्ञान माना जाए तो हृदय में पर्वत के आकार सदृश उसका निवास होना चाहिए। (३) सौत्रान्तिक किसी पदार्थ को प्रत्यक्ष नहीं मानता तो वह स्वयं और उसका वचन भी अनुपमेय होना चाहिए, प्रत्यक्ष नहीं। अगर प्रत्यक्ष न हो तो "अयं घटः" यह प्रयोग भी नहीं होना चाहिए, "अयं घटैक देशः" यह घट का एक देश है, ऐसा प्रयोग होना चाहिए। एक देश का नाम घट नहीं किन्तु समुदाय का नाम घट है, अर्थात् सावयव घट प्रत्यक्ष होता है। (४) वैभाषिक बाह्य पदार्थों को ही प्रत्यक्ष मानता है। यह भी तर्क संगत नहीं। जहाँ ज्ञाता और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
ज्ञेय होता है, वहीं प्रत्यक्ष होता है। यद्यपि प्रत्यक्ष का विषय बाहर होता है, पर तदाकार ज्ञान तो आत्मा को ही होता है। क्षणिक पदार्थ और क्षणिक ज्ञान मानने से "मैंने पहले देखा था"—ऐसा पूर्व दृष्ट-श्रुत स्मरण नहीं हो सकता।

बौद्धों के पांच स्कन्ध, अर्थात् दुःख हैं। (१) रूप स्कन्ध, इन्द्रियों से रूपादि का ग्रहण (२) विज्ञान स्कन्ध, विज्ञान, प्रवृत्ति का जानना रूप व्यवहार (३) वेदना स्कन्ध, पहले दोनों स्कन्धों से उत्पन्न सुख-दुःख आदि प्रतीति रूप व्यवहार (४) संज्ञा स्कन्ध, गौ आदि संज्ञा का सम्बन्ध नामी के साथ मानना (५) संस्कार स्कन्ध, राग द्वेषादि क्लेश, क्षुधा तृषादि उपक्लेश, मद, प्रमाद, अभिमान, धर्म, अधर्म, रूप व्यवहार।

क्या संसार दुखःमय है?

अगर सब संसार दुःख रूप होता तो किसी जीव में प्रवृत्ति न होनी चाहिए। संसार में जीवों की प्रवृत्ति प्रत्यक्ष दीखती है, इसलिए सब संसार दुःख रूप नहीं हो सकता, किन्तु इसमें सुख-दुःख दोनों हैं। यदि बौद्धों का ही सिद्धान्त मान लिया जाए तो खान-पानादि करना, पथ्य, औषधि आदि सेवन करके शरीर रक्षण में प्रवृत्त से सुख क्यों मानते हैं? अगर कहें कि हम प्रवृत्त तो होते हैं,पर इसे दुःख ही मानते हैं, तो यह ठीक नहीं, क्योंकि जीव सुख जान कर ही प्रवृत्त और दुःख जानकर ही निवृत्त होता है। संसार में धर्म क्रिया, विद्या, सत्संग, आदि श्रेष्ठ व्यवहार सुखदायक हैं, इन्हें कभी दुःख का लिंग नहीं माना जा सकता। ये पांच स्कन्ध भी अपूर्ण हैं क्योंकि ऐसे ऐसे स्कन्धों में से एक-एक के अनेक भेद हो सकते हैं। बुद्ध को तो लोकनाथ मानते हैं पर जो अनादि नाथों का नाथ परमात्मा है, उसे नहीं मानते। यह ज्ञान स्वयं प्राप्त हुआ है—यह निराधार है क्योंकि ज्ञान स्वयं उपार्जित नहीं होता है। बौद्ध द्वादशायतन पूजा को मोक्ष का साधन मानते हैं पर दश प्राण और ग्यारहवें जीवात्मा की पूजा क्यों नहीं करते? अगर १० इंद्रिय और अन्तःकरण की पूजा ही मोक्षप्रद है तो इन बौद्धों और विषयी जनों में क्या भेद रहा? बौद्ध सुगत बुद्ध को ही गुरु मानते हैं। पर उसका गुरु कौन था? जब विश्व क्षण-भंगुर है तो चिरदृष्ट पदार्थ का "यह वही है"—ऐसा स्मरण नहीं होता

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

चाहिए। इस क्षणिकवाद के अनुसार तो बौद्धों का मोक्ष भी क्षण भंगुर होगा। अगर वासना उच्छेद ही मुक्ति है तो सुषुप्ति में भी मुक्ति माननी होगी।

जैनमत

जैनी स्यादवाद्, अर्थात् सप्तभंगी मानते हैं :—

(१) जीव है तो जीव के विरोधी जड़ पदार्थों में जीव का अभाव (२) जड़ में जीव नहीं है (३) जीव है पर कहने योग्य नहीं है, (४) जब जीव शरीर धारण करता है तब प्रसिद्ध और जब शरीर से पृथक्, तब अप्रसिद्ध (५) जीव है पर कहने योग्य नहीं, ऐसा कथन (६) जीव प्रत्यक्ष प्रमारण से कहने में नहीं आता, इसलिए चक्षुः प्रत्यक्ष नहीं (७) एक काल में जीव का अनुमान से होना और अदृश्यपन में न होना और एक सा न रहना किन्तु क्षण-क्षण में परिणाम को प्राप्त होना, अस्ति नास्तित्व होवे और नास्ति-अस्ति व्यवहार भी न होवे। इस प्रकार जैनमत में नित्यत्व सप्तभंगी और अनियत्व सप्तभंगी तथा सामान्य धर्म, विशेष धर्म, गुण और पर्यायों की प्रत्येक वस्तु में सप्तभंगी होती है। इस प्रकार सप्तभंगी के अनन्त रूप है।

जैनमत का यह सारा जगड्वाल केवल अज्ञानियों को फँसाने के लिए ही है। न्यायदर्शन के अन्योऽन्याभाव में साधर्म्य और वैधर्म्य का जो रूप है, उसी में सब चरितार्थ हो जाता है। जीव का अजीव में और अजीव का जीव में अभाव रहता ही है, जीव और जड़ में वर्तमान होने से साधर्म्य और चेतन तथा जड़ होने से वैधर्म्य, अर्थात् जीव में चेतनत्व (अस्तित्व) है और जडत्व (नास्तित्व) नहीं हैं। इसी प्रकार जड़ में जडत्व और चेतनत्व नहीं हैं। इस प्रकार गुण, कर्म, स्वभाव के समान धर्म और विरुद्ध धर्म के विचार से जैनमत में सप्तभंगी और स्याद्वाद का कोई महत्व नहीं रहता। यह केवल प्रपंच मात्र है।

क्या जीव परमेश्वर बन सकता है ?

जैनी कहते हैं कि जीव ही परमेश्वर हो जाता है, अनादि परमेश्वर कोई नहीं, तीर्थंकरों को ही केवल मुक्ति प्राप्त होती है। पर प्रश्न तो यह है कि जो अनादि ईश्वर न होता तो "अर्हन्" देव के माता-पिता आदि के शरीर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

का साँचा कौन बनाता ? बिना संयोगकर्त्ता के यथायोग्य सर्वावयव सम्पन्न, यथोचित कार्य करने में उपयुक्त शरीर बन ही नहीं सकता और जिन पदार्थों से शरीर बना है, जड़ होने से वे स्वयं इस प्रकार सुगठित शरीर का रूप धारण नहीं कर सकते। रागादि दोष सहित होकर पश्चात् दोष रहित होने पर वह ईश्वर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जिस निमित्त से वह रागादि से मुक्त होता है, उस निमित्त के छूटने से उसका कार्य मुक्ति भी अनित्य होगी। जो अल्प और अल्पज्ञ हैं; वह सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता। एक देशी होने से वह सर्वव्यापक नहीं हो सकता। इसलिए तीर्थंकर कभी परमेश्वर नहीं हो सकते। परमात्मा प्रयत्क्ष, अनुमान, आगम प्रमाणों से सिद्ध है। कार्य में कारण का स्वभाव और कारण में कार्य का स्वभाव नित्य है, वैसे तो परमेश्वर और परमेश्वर के अनन्त विद्यादि गुण नित्य होने से ईश्वर प्रणीत वेद में अनवस्था दोष नहीं आता।

नास्तिक जैन की शंकाओं का उत्तर

आरम्भिक नास्तिक संवाद जैनियों की प्रामाणिक पुस्तक प्रकरणरत्नाकर में उल्लिखित है जिसमें नातिस्क की शंकाओं का स्वामीजी ने युक्तियुक्त उत्तर दिया है। स्वामीजी ने स्पष्ट किया है कि ईश्वर की शक्ति के बिना कर्म स्वयं कुछ नहीं कर सकता है, ईश्वर अक्रिय नहीं किन्तु सक्रिय है, ईश्वर सर्वव्यापक है, सत्यभाषणादि, कर्म, सुशीलता आदि स्वभाव विघादि सद्गुणों के न्यूनाधिक होने से ब्राह्मण. क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र बड़े छोटे माने जाते हैं, इस से ईश्वर के सर्वव्यापक गुण पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। ईश्वर की रचना से बनी सृष्टि में माता पितादि का काम धर्मानुकूल सन्तान उत्पन्न करना, पालन-पोषण और सुयोग्य बनाना है। यदि परमात्मा जगत् न बनावे तो क्या जीव में इतना सामर्थ्य है कि वह बना सके? परमात्मा मुक्ति रूप नहीं है, वह तो, स्वभावतः, बन्ध मोक्ष से रहित है, मुक्ति रूप मानने से बद्ध भी मानना होगा, यह संसार बखेड़ा नहीं हैं किन्तु जीवात्मा के लिए कर्मफल भोगते हुए मोक्ष का साधन है। भांग पीने से आये मद के सदृश जीव स्वयं कर्मफल नहीं भोग सकता, जैसे बिना राजा के चोर, डाकू, स्वयं कारागृह अथवा फाँसी पर नहीं चढ़ जाते, इसी प्रकार जीव के लिए भी ईश्वर की न्याय

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

व्यवस्था आवश्यक है। ईश्वर एक ही है, जीवों के समान अनेक नहीं। अनैक मानने से जीवों के समान इनमें भी लड़ाई-झगड़ा रहता। जगत् अपने आप बन जाता है, यह कहना वैसी ही मूर्खता है जैसे यह कहना कि खेत में गेहूं अपने आप उगकर, पीसकर, रोटी बनकर जैनियों के पेट में चली जाए। ईश्वर में किसी प्रकार का मोह व वैराग्य नहीं है। वैराग्य और मोह तो जीव में ही घटते हैं। ईश्वर जीवों को कर्म फल प्रदाता होने से स्वयं प्रपंची नहीं हो जाता, जैसे धार्मिक न्यायाधीश और अनेक विध कर्मकर्त्ता विद्वान् प्रपंची व लिप्त नहीं होते हैं।

क्या जीव सदा के लिए मुक्त हो जाता है ?

जैनी शंका करता है कि धान्य का छिलका उतार देने व अग्नि के संयोग से बीज पुनः संसार में नहीं उगता। इसी प्रकार मुक्त जीव पुनः संसार में नहीं आता। इसके उत्तर में स्वामी जी कहते हैं कि जीव औरकर्म का सम्बन्ध छिलके और बीज के समान नहीं है किन्तु इनका समवाय सम्बन्ध है। अनादिकाल से जीव और उनमें कर्म और कर्त्तृत्व शक्ति का सम्बन्ध है। यदि जीव में कर्म करने की शक्ति का अभाव मानोगे तो सब जीव पाषाणवन्त् हो जाएगें और उसमें मुक्ति भोगने का सामर्थ्य भी नहीं रहेगा। साधनों से सिद्ध पदार्थ नित्य कभी नहीं हो सकता। जैसे निमित्तों से मलिनता छूटती है, वैसे निमित्तों से मलिनता लग भी जाएगी। इसलिए जीव का बन्ध और उसकी मुक्ति प्रवाह रूप से अनादि है अनादि अनन्तता से नहीं अगर जीव निर्मल कभी नहीं था तो वह निर्मल कभी हो भी नहीं सकेगा। जैसे शुद्ध वस्त्र में पीछे से लगे मैल को धोने से छुड़ा दिया जाता है पर वस्त्र के स्वाभाविक श्वेत वर्ण को नहीं छुड़ा सकते, मैल फिर भी वस्त्र में लग जाता है, इसी प्रकार मुक्ति में भी लगेगा। अगर जीव स्वयं पूर्वापार्जित कर्म से ही शरीर धारण करता हो, ईश्वर की व्यवस्था अनुसार नहीं तब, केवल कर्म ही शरीर धारण में निमित्त होगा और जिस जन्म में बहुत दुःख हो, उसे कभी धारण न करके अच्छे जन्म ही धारण करेगा। जो कहो कि कर्म प्रति बंधक है, तब भी चोर स्वयं बन्दीगृह में व फाँसी पर नहीं चढता किन्तु राजा की आज्ञा से ही, इसी प्रकार जीव को शरीर धारण कराने और उसके कर्मानुसार फल देने वाला

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ईश्वर मानना ही पड़ेगा। जीव चाहे जैसा अपना ज्ञान और सामर्थ्य बढ़ावे, तो भी उसमें परिमित ज्ञान और ससीम समर्थ्य रहेगा,— ईश्वर के समान कभी नहीं हो सकता।

जैन ग्रन्थों में अजैनियों की घोर निन्दा

जैनमत कहता है कि मनुष्य चाहे तपस्वी न हो, विद्वान् न हो, दान न देता हो पर अरिहन्त की आराधना और जैनमत पर विश्वास करता हो तो उसका कल्याण हो जाएगा। इसी प्रकार जैन-ग्रन्थों में अजैनियों की घोर निन्दा और जिनेन्द्र की ही भारी प्रशंसा की गयी है और उसे ईश्वर रूप बताया गया है। जैनियों को आदेश दिया गया है कि भले ही मृत्यु पर्यन्त दुःख हो, पर कृषि-व्यापारादि कर्म जैनी कभी न करें। शिव, विष्णु आदि की पूजा करने वाले नरक जाते हैं, तब क्या जैनियों को मूर्ति पूजन करने से स्वर्ग मिल जाएगा ? जिस प्रकार अन्य मतों में वैकुंठ, कैलास चौथा आसमान, सातवाँ आसमान आदि मुक्ति के स्थान हैं, वैसे ही जैनियों की सिद्ध शिला और शिवपुर स्थान हैं।

मुख पर पट्टी बाँधना — हानिकारक

मुख पर पट्टी बांधने को जैनी आवश्यक समझते हैं क्योंकि वायु के सूक्ष्म कीटाणु मुख में जाकर मर जाते हैं, उस पाप से बचाव हो जाता है। स्वामी जी कहते हैं कि जीव अगर अमर है, मुख की वायु से कभी नहीं मरते। जैनी कहता है कि जीव तो नहीं मरता किन्तु उष्ण वायु से उन्हें पीड़ा पहुंचती है और पीड़ा देना पाप है। स्वामी जी कहते हैं कि यह असम्भव है क्योंकि पीड़ा दिये बिना किसी जीव का किंचित भी निर्वाह नहीं हो सकता। अगर मुख से जीवों को पीड़ा पहुंचती है, तो चलने, फिरने, बैठने, हाथ उठाने और नेत्रादि संचालन से भी पीड़ा अवश्य पहुंचती है। कपड़ा बाँधने से जीवों को अधिक दुःख पहुंचता है, मुख की वायु रुककर नीचे व पार्श्व में अथवा मौन समय में नासिका द्वारा इकट्ठी होकर वेग से निकलता हैं जिससे उष्णता अधिक पैदा होती और जीवोंको अधिक पीड़ा पहुँचती होगी—तुम्हारे मतानुसार। जैसे कमरे के सब दरवाजे बन्द कर देने व पर्दे डालने से उष्णता अधिक होती है खुला रखने से

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

उतनी नहीं, इसी प्रकार मुख पर कपड़ा बांधने से उष्णता अधिक होती है। मुख पर पट्टी बांधने से अक्षरों का यथायोग्य उच्चारण नहीं हो सकता। मुख पर पट्टी बाँधने से दुर्गन्ध भी अधिक बढ़ती है क्योंकि शरीर के भीतर अनेक प्रकार के दुर्गन्ध हैं। पर पट्टी बाँधने, से दन्तधावन, मुख प्रक्षालन, वस्त्र प्रक्षालन न करने से जैनी के शरीर से अधिक दुर्गन्ध उत्पन्न हो संसार में अनेक रोगों द्वारा जीवों को पीड़ा प्राप्त होती है और पाप अधिक लगता है। स्वामी जी कहते हैं कि जैसे क्लोरोफार्म सुघांने पर पीड़ा इत्यादि नहीं होती, इसी प्रकार वायु कायादि के जीव भी अत्यन्त मूर्च्छित होने से सुख-दुःख को प्राप्त नहीं होते, फर, इन्हें पीड़ा से बचाने का प्रश्न ही पैदा नहीं होता। जैनी की यह युक्ति कि बन्द मकान में जलायी अग्नि बाहर के जीवों को दुःख नहीं पहुँचा सकती, इसी प्रकार मुख पट्टी भी बाहर के जीवों को पीड़ा नहीं पहुंचाती, इस पर स्वामी जी कहते हैं कि बिना वायु के संयोग के अग्नि जल हो नहीं सकता। हाथ की आड़ करने से मुख पर अग्नि की आँच कम लगती है पर वह आँच हाथ पर तो अधिक लगती ही है। इसलिए मुख पट्टी से कोई लाभ नहीं होता।

शिलाओं पर तीर्थ करों के जन्मोत्सव

इस समुल्लास के अन्त में ऋषि कहते हैं कि जैनियों के तीर्थकरों के जन्मोत्सवादि के लिए उत्तर-दक्षिण दिशाओं में सिंहासन व शिलाएं हैं। यह इनकी मुक्ति की सिद्धशिला है जिसके बारे में जैनियों में बहुत गोलमाल है। जल छान कर पीना, जीवों पर दया करना और रात्रि को भोजन न करना, ये तीन बातें जैनमत में अच्छी हैं, बाकी सब तो असम्भव हैं।

> किसी जीव को दुःख न देना यह बात सर्वथा सम्भव नहीं हो सकती, क्यों कि दुष्टों को दण्ड देना भी दया में गणनीय है जो एक दुष्ट कों दण्ड न दिया जाय तो सहस्रों मनुष्यों को दुःख प्राप्त हो, इसलिए वह दया अदया और क्षमा अक्षमा हो जाय।
>
> —महर्षि दयानन्द

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

ईसाई मत समीक्षा

ईसाई मत की समीक्षा करने से पहले महर्षि दयानन्द ने यहाँ भी एक अनुभूमिका लिखी है। ऋषि ने किस उद्देश्य से यह समुल्लास लिखा है, यह निम्न शब्दों से स्पष्ट है :—

"यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिए हैं, न किसी को दुःख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ.........।
इस लेख से यही प्रयोजन है कि सब मनुष्य मात्र को देखना, सुनना, लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी प्रतिपक्षी होके विचार कर इसाई मत का आन्दोलन सब कोई कर सकेंगे। इससे यह एक प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्म विषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्यासत्य मत और कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्म सम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्त्तव्य कर्म का स्वीकार असत्य और अकर्त्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा"

निर्णय की कसौटी-आत्मा

स्वामी जी के शब्दों में प्रत्येक व्यक्ति का अपना आत्मा निर्णय के लिए बढ़िया कसौटी है। वे कहते हैं:—

"मनुष्य का आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य का निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है, जितना अपना पठित वाश्रुत है उतना निश्चय कर सकता है......। जो जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सबमें एकसे हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो तो भी कुछ थोड़ा सा विवाद चलता है। यदि वादी प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिए वाद प्रतिवाद करें तो वह अवश्य निश्चय हो जाए।"

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

सृष्टि रचना—विज्ञान विरुद्ध

बाइबल के अनुसार जब प्रारम्भ में ईश्वर ने पृथ्वी बनाई, तब वह बेडौल और सूनी थी। पर प्रारम्भ का क्या मतलब ? क्या इससे पहले सृष्टि नहीं हुई थी। अगर वह सूनी और बेडौल थी, तब उसे यकसाँ और ठीक डौल वाला किसने बनाया ? बाइबिल का ईश्वर निराकार, चेतन और व्यापक है पर वह सनाई पर्वत और चौथे आसमान में रहता है। जब वह निराकार है, तब किसी एक स्थान में कैसे रह सकता है ? वह विभु और सर्वज्ञ नहीं हो सकता। ईश्वर ने कहा, उजियाला होवे और उजियाला हो गया। क्या जड़ रूप उजियाला ईश्वर की बात सुन सकता है ? अगर सुन सकता है तो इस समय भी सूर्य और दीप, अग्नि हमारी बात क्यों नहीं सुनते ? प्रकाश तो जड़ होता है। ईश्वर ने आकाश को बनाया और नीचे के जल को ऊपर के जल से अलग कर दिया। फिर दिन-रात बनाए। क्या जल भी ईश्वर की बात सुन सकता है ? जब सूर्य ही नहीं था तब दिन-रात कहाँ से आ गए ? ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में बनाया। तब आदम भी ईश्वर की तरह पवित्र, ज्ञानस्वरूप और आनन्दमय होना चाहिए था ?

आदम की पसली से नारी कैसे ?

आदम को कहाँ से बनाया ? मिट्टी से। तब मिट्टी कहाँ से आ गयी ? सृष्टि से पहले ईश्वर के बिना कोई वस्तु नहीं थी। जब कुछ नहीं था, तो जगत् कहाँ से बन गया ? ईश्वर ने आदम के नथुनों में श्वास फूँककर उसे जीवित बना दिया और उसे अदन के बाग में रखा। जब नथुनों में श्वास फूँका तो यह श्वास ईश्वर के अनुरूप था अथवा भिन्न ? अगर भिन्न था तो आदम ईश्वर के अनुरूप कैसे हुआ ? जब आदम को अदन के बाग में रखा तो क्या उसे पता नहीं था कि उसे पुनः यहाँ से निकालना पड़ेगा ? आदम की पसली में से नारी बनाई। जब ईश्वर ने आदम को मिट्टी से बनाया तो नारी को क्यों नहीं मिट्टी से बनाया ? जब आदम की पसली निकाली, तब मनुष्य की एक पसली सदा के लिए कम हो जानी चाहिए थी और स्त्री के शरीर में एक ही पसली होनी चाहिए थी क्योंकि वह एक ही पसली से बनी है। जिस सामग्री

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

से जगत् बनाया था, क्या उसी से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था ?

पेड़ का फल निषिद्ध क्यों ?

सर्प ने स्त्री को बहकाया और उसने निषिद्ध वृक्ष का फल खाया। अगर ईश्वर सर्वज्ञ है तो उसने इस धूर्त सर्प, अर्थात्, शैतान को क्यों बनाया ? जब यह पेड़ ज्ञानदाता और अमर करने वाला है तो उसका फल क्यों निषिद्ध किया ? आज संसार में कोई वृक्ष ज्ञानदाता और अमर नहीं है। अगर आदम को फल खाने से ज्ञान हुआ तो ईश्वर को ईर्ष्या क्यों हुई ? कई दिन के बाद काइन भूमि के फलों की भेंट ईश्वर के लिए लाया और हाबील मोटी-मोटी भेड़ लाया। ईश्वर ने काइन की भेंट का आदर न किया और हाबील की भेंट का आदर किया। इससे स्पष्ट है कि ईश्वर मांसभक्षक है। काइन और हाबील में झगड़ा पैदा करना क्या ईश्वर के लिए उचित था ? जब ईश्वर ने काइन से उसके भाई हाबील का हाल पूछा तो क्या सर्वज्ञ होने से वह न जानता था ? ईश्वर के पुत्रों और आदम की पुत्रियों ने अपनी इच्छा अनुसार विवाह कर लिए। उधर, ईश्वर आदम की दुष्टता से तंग आकर पछता रहा था। हम पूछते हैं कि ईश्वर के बेटे कौन हैं ? उसकी स्त्री, सास, श्वसुर, साला सम्बन्धी कौन हैं ? आदम बनाकर यदि ईश्वर पछताता है, तो वह विद्वान् दूरदर्शी नहीं था।

नूह की नौका में करोड़ों पशु-पक्षियों के जोड़े कैसे ?

ईश्वर ने नूह से कहा कि तू ३०० हाथ लम्बी, ५० हाथ चौड़ी और ३० हाथ ऊँची नाव बनाना और अपने सारे परिवार के साथ-साथ सब प्रकार के दो-दो पशु-पक्षी साथ ले लेना। यह नाव किस कारीगर ने किस कारखाने में बनाई ? विश्व के करोड़ों पशु-पक्षी क्या इस नाव में समा सकते थे ? नूह ने इन सबको वेदी बनाकर बलि चढ़ा दिया और ईश्वर को गंध आ गई। क्या ईश्वर के नाक है सूँघने के लिए ? नूह से पहले रक्षा कराई पशु-पक्षियों की, फिर बलि चढ़वाई, यह क्या बुद्धिमत्ता है ? इस प्रकार ईश्वर तो कसाई हो गया। सब लोगों ने मिलकर एक मीनार बनाकर स्वर्ग तक पहुँचने का निश्चय किया। सबकी एक ही भाषा थी। अगर सारी पृथ्वी पर एक ही बोली और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
एक ही भाषा थी तो ईश्वर को ईर्ष्या क्यों हुई ? उसने भाषा का झगड़ा पैदा कर मनुष्यों को एक नहीं होने दिया। यह ईश्वर जीवों की उन्नति नहीं चाहता था।

बाप से बेटियों का गर्भ

ईश्वर ने इब्राहीम से कहा कि हरेक पुरुष का खतना किया जाए, जिसका खतना नहीं होगा, वह कट जाएगा। अगर खतना इतना जरूरी था तों ईश्वर ने गुप्त स्थान के साथ इसे बनाया ही क्यों ? आज के ईसाई ईश्वर की इस आज्ञा का पालन क्यों नहीं करते ? तौरेत पर्व १८ के अनुसार ईश्वर ने इब्राहीम से बछड़ा मारकर पकाने के लिए कहा जिसे वह खाएगा। अगर ईश्वर ही गाय का बछड़ा खाने को उतावला है तो आम लोग गाय आदि पशुओं को क्यों नहीं खाएंगे ? ईश्वर ने पहाड़ पर गंधक और आग की वर्षा की और सब भूमि उलट दी। क्या इस ईश्वर को दया न आयी ? तौरेत पर्व १९ के अनुसार सोलूत की दोनों वेटियों ने अपने बाप कों दाख का रस पिलाया और दोनों पिता के पास रात को सोकर गर्भवती हुईं। कितनी नीचता है कि पिता-पुत्री मद्य पीकर व्यभिचार करें और लड़कियाँ गर्भवती हो जाएँ। ईश्वर ने इब्राहीम से कहा कि तू अपने इकलौते बेटे की बलि चढ़ा। जब इब्राहीम बलि चढ़ाने लगा, तब ईश्वर के दूतों ने आकर रोक दिया। क्या ईश्वर सर्वज्ञ नहीं था जो बाद में लड़के की हत्या करने से इब्राहीम को रोक देता है ? ईश्वर ने इब्राहीम से कहा कि अपने मृतक को जलाना नहीं, गाड़ देना ताकि वह सोया रहे। अगर मृतक से इतनी ही प्रीति है तो शव को अपने घर में ही क्यों नहीं गाड़ देते ? मुर्दों को गाड़ देने से वायु दुर्गन्धमय होती है। दूसरा, गाड़ने में कितनी भूमि व्यर्थ जाती है जिस पर खेती, बागीचा लग सकता है अथवा रिहायश हो सकती थी।

कोख को खोलकर गर्भ कैसे ?

तौरेत उत्पत्ति, पर्व २७ के अनुसार याकूबा ने अपने पिता को अहेर का माँस खिलाकर अपने लिए आशीष मांगा। क्या हत्या करके आशीर्वाद प्राप्त करना और पैगम्बर बनना शोभा देता है ? ईश्वर ने राखिल की कोख को

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
खोला। वह गर्भवती हुई और उसके बेटा हुआ। ऐसा प्रतीत होता है कि ईसाइयों का ईश्वर डाक्टर है और कोख खोलने में बड़ा होशियार है। ईश्वर रात को लाबनक के स्वप्न में आया और उसे याकूबा को बुरा कहने से सावधान किया। स्वप्न तो प्रायः सब मनुष्यों को आते हैं? क्या सचमुच वे ईश्वर की प्रेरणा से होते हैं और सच्चे होते हैं।

भाई की पत्नी के पास,

याकूब का मल्ल युद्ध हुआ। उसने शत्रु याकूब की जाँघ की नस को भीतर से छुआ, वह नस चढ़ गई। उसने कहा, मैं तुझे तब जाने दूँगा जब तू मुझे आशीष देगा। शत्रु ने कहा, तेरा नाम अब याकूब नहीं होगा किन्तु इजरायल होगा क्यों कि तूने ईश्वर के आगे राजा की न्याँई मल्ल युद्ध किया हैं। ईसाइयों का ईश्वर बड़ा अखाड़िया प्रतीत होता है। अगर ईश्वर अच्छा डाक्टर होता तो जाँघ की नाड़ी को अच्छा भी कर देता। उत्पत्ति पर्व ३८ के अनुसार यहूदाह के कहने से ओनान अपने भाई की पत्नी के पास लेटने गया और जब वीर्य निकला तो भूमि पर गिरा दिया। ईश्वर ने उसे मार डाला। क्या नियोग करना बुरा था जो ओनान को मार डाला गया?

ईश्वर द्वारा सब मिस्रियों की हत्या

यात्रा पुस्तक पर्व २के अनुसार ईसाइयों के एक बड़े पैगम्बर मूसा ने एक मिस्री को मार कर उसे बालू में छिपा दिया। क्या पैगम्बर के लिए दूसरे की हत्या करना उचित है? ईश्वर ने इसराइलों को आज्ञा दी कि अपने मकान की चौखट पर लोहू की छाप लगा दो ताकि ईश्वर जब मिस्रियों को मारने आये तो इस लोहू की छाप देख कर उन्हें नहीं मारेगा। क्या ईश्वर जादू टोना करने वाला है? क्या वह सर्वज्ञ नहीं है? ईश्वर आधी रात को उठा और मिस्र के सब लड़के, वृद्ध और पशु तक मार डाले। क्या यह ईश्वर दयालु नहीं है अथवा नादिरशाह की तरह कत्लेआम करने वाला है? ईश्वर ने इसराइलों से कहा कि वे मूसा के पीछे चलें और वह छड़ी लेकर समुद्र के पानी के दो टुकड़े कर बीच में से निकाल ले जाएगा। अगर ईश्वर ने उपकार ही करना था था तो रेलगाड़ी बना देता जिससे सब इसराइलों का भला हो जाता।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
ईश्वर ने कहा कि मैं इसराइल के शत्रुओं को चार पीढ़ी तक दंड दूँगा। जब दंड ही देना था तो चार पीढ़ी तक ही क्यों, मूलोच्छेद ही कर देता ? ईश्वर ने कहा, छः दिन श्रम कर सात वां दिन रविवार पवित्र है, ईश्वर का स्मरण-कर। क्या छः दिन पाप की छूट रहेगी और ईश्वर सोया रहेगा ? मूसा ने कहा कि पुरुष के साथ रहने वाली हरेक स्त्री को मार डालो और जो कुँवारी हैं, उन्हें जिन्दा रखो। ईश्वर की यह अजब आज्ञा है। हत्या की खुली छूट है और कुँआरी कन्याओं की विषयभोग के लिए रक्षा है। ईश्वर की आज्ञा से मूसा ने बैलों का बलिदान किया। आधा लहू पात्रों में रखा और आधा वेदी पर छिड़का। जब पैगम्बर बैलों का बलिदान करेगा तो गौ आदि का भी बलिदान होगा। क्या इससे जगत् की हानि न होगी ?

ईश्वर के हाथ का रूप क्यों नहीं ?

तौरेत यात्रा पुस्तक पर्व ३३ के अनुसार ईश्वर ने मूसा से कहा कि पहाड़ के दरार में से मैं उठूँगा तू मेरा पीछा देखेगा, रूप दिखाई नहीं देगा। क्या ईश्वर मनुष्य देह धारी था ? जब पीछा देखेगा तो क्या उसके हाथ का रूप न देख सकेगा ?

पाप से बचने के लिए—गौ की हत्या का आदेश

लैव्य पुस्तक पर्व १ के अनुसार ईश्वर कहता है कि उसके आगे बैल को मारें और बैल के लहू को चारों ओर छिड़कें, अग्नि में डालें और ईश्वर सुगंध लेवे। क्या यह कसाई खाना है अथवा कोई यज्ञ वेदि है ? जब कोई पाप करे तो गाय, बछिया, बकरे आदि की भेंट देवे। क्या इस प्रकार जीव हत्या करने से पाप से छुटकारा मिल सकता है ? अगर भेड़ लाने की रकम न हो तो कबूतर के दो बच्चों को मार कर भेंट चढ़ाया जाए। यह मजेदार तरीका है कि पाप से छुटकारा भी हो गया और खाने को मांस भी मिल गया।

७० हजार इसराइल ईश्वर ने मार दिए

काल के समाचार की पहली पुस्तक के अनुसार ईश्वर ने इसराइलों पर मौत भेजी और उनके ७० हजार पुरुष मार दिये। पहले तो इसराइलों पर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation Chennai
इतना प्रेम था' अब ईश्वर ने इतना क्रोध किया कि ७० हजार ही मार दिये। क्या विचित्र न्याय है ?

ऐयूब की पुस्तक के अनुसार शैतान ईश्वर के सामने उसके भक्तों को मारता व दुःख देता है पर ईश्वर कुछ कर नहीं पाता है। शैतान से वह भी डर जाता है।

कुंवारी मरियम के पेट से ईसा

मत्ती रचित इँजील के अनुसार, ईसा की माता मरियम की मंगनी यूसुफ के साथ हुई थी पर वह विवाह ने पहले ही गर्भवती हो गयी। ईश्वर के दूत ने कहा, यूसुफ तू डर मत, वह पवित्र आत्मा है। बिना किसी पुरुष के संयोग के स्त्री का गर्भवती होना असम्भव है, अवश्य ही किसी पुरुष से मरियम का समागम हुआ होगा। ईसा की शैतान ने परीक्षा ली, जंगल में ४० दिन और ४० रात उपवास कराके। शैतान द्वारा ईसा की परीक्षा की क्या आवश्यकता की ? क्या कोई ४० दिन और ४० रात भूखा रह कर जीवित रह सकता है ? ईसा की पत्थर की रोटियाँ बनाने की करामत असम्भव है क्योंकि कोई भी पत्थर की रोटियाँ नहीं बना सकता। ईसा ने कहा कि तुम मेरे पीछे आओ, मैं तुम्हें मनुष्यों के मछुए बनाऊँगा। क्या यह कोई अच्छा उपदेश है ? पिता-माता की सेवा से वंचित कर लोगों को अपने जाल में फँसाना और उत्तम मनुष्य से मछुआ बना देना। ईसा ने प्रार्थना की कि हमें आज दिन भर की रोटी दे। स्पष्ट है, जब और जहाँ ईसा का जन्म हुआ, वहां लोग जँगली और भूखे थे। रोटी की ही प्रार्थना ईश्वर से करते थे। ईसा के हाथ लगाने से कोढ़ी का कोढ़ दूर हो गया। तब आज भी पादरियों के हाथ लगने से कोढ़ दूर हो जाना चाहिए। कोढ़ियों के लिए अस्पतालों की क्या जरूरत है ? मरे हुए मनुष्य ने ईसा से बात चीत की। यह असम्भव है, मृत मनुष्य कब्रिस्तान से कभी जीवित निकल नहीं सकता। ईसा ने १२ शिष्यों द्वारा हरेक के रोग और व्याधि दूर कर दी। मैं घर में लड़ाई पैदा करने से आया हूँ। अगर इन १२ शिष्यों के सब रोग दूर कर दिये थे तो आज इतने रोगी सब देशों में क्यों हैं ? क्या घर में फूट पैदा करना ही ईसा का काम था ? ईसा ने कहा कि अगर तुम तनिक

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

विश्वास से कहोगे तो पहाड़ यहां चला जाएगा। अगर यह से बात ठीक है, तव विश्वास से ही पाप छूट जाएंगे, तव फिर ईसा की पूजा और गिरजा घरों की क्या जरूरत है?

ईसा के १२ सिंहासन और १२ कुल कहाँ?

ईसा कहता है कि ईश्वर के राज्य में धनवान के प्रवेश करने की अपेक्षा ऊँट का सुई की नोक में से जाना सहज है। इससे स्पष्ट है कि ईसा दरिद्र था, धनवान उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते थे, इससे चिढ़ कर उसने ऐसा लिखा होगा। ईसा कहता है कि १२ सिंहासनों पर बैठकर इसराइल के १२ कुलों का न्याय कर देगा। ये १२ सिंहासन क्या हैं और इस्राइल के १२ कुलों का ही न्याय क्यों, अन्य सब का क्यों नहीं? यह तो स्पष्ट अन्याय है।

ईसा बड़ा क्रोधी था। उसने गूलर के एक वृक्ष को शाप दिया कि तू सूख जाएगा और तुझमें फल नहीं लगेगा। ईसा कहता है कि तारे गिर जाएंगे सूर्य प्रकाश नहीं देगा, चाँद ज्योति नहीं देगा। यह ईसा की कौन सी अनोखी विद्या से होगा? ईसा कहता है कि जो मेरे शिष्य हैं, वे स्वर्ग में और बाकी सब अनन्त आग में जल जायेंगे। पर जब आकाश ही नहीं होगा, तब आग कहाँ रहेगी? ईसा का एक प्रधान शिष्य इसकरियोती प्रधान याजकों के पास गया, बोला, मैं ईसा को पकड़वा दूँ तो मुझे क्या दोगे? जो ईसा पापियों के पाप क्षमा कर सकता था वह अपने शिष्य का ही सुधार अपने जीवन काल में न कर सका। जब ईसा पकड़ा गया तो उसके शिष्य उसे छोड़कर भाग गये। क्या ईसा का अपने शिष्यों पर इतना ही प्रभाव था कि अन्त समय में वे सब धोखा दे गये? जब ईसा को सूली पर चढ़ाया गया तब अपने जादू भरे कार्यों से सबको अपना शिष्या बना लेता। क्या ईश्वर त्रिकाल दर्शी नहीं था जो अपने पुत्र को पहले ही इस संकट की खबर दे देता?

आदि में वचन, वचन ईश्वर के संग, वचन ही ईश्वर?

योहन रचित सुसमाचार के अनुसार आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था। यह बात युक्ति हीन हैं। वचन विना वक्ता के नहीं हो सकता, इसलिए वचन ईश्वर के संग था यह कहना व्यर्थ है और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

वचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता क्योंकि जब वह आदि में ईश्वर के संग था तो पूर्व वचन था वा ईश्वर था यह नहीं हो सकता। वचन के द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती।

ईसा के साथ १ लाख ४० हजार लोग

योहन के प्रकाशित वक्तव्य के अनुसार मेम्ना सियोन पर्वत पर खड़ा है, उसके संग एक लाख ४० हजार लोग हैं जिनके माथे पर उसका नाम और उसके पिता का नाम लिखा है। यह गणना कैसे की गयी? शेष करोड़ों इसाइयों के सिर पर मोहर क्यों न लगी? क्या वे नरक में गये? क्या सिओन पर्वत पर ईसा उसके बाप और उसकी सेना का कोई चिह्न है? योहन प्रकाश के अनुसार ईसा का विवाह स्वर्ग लोक में हुआ है। यहाँ भूमि पर तो ईसा कुंआरा ही रहा, स्वर्ग में विवाह की भला क्या जरूरत थी? योहन प्रकाश के अनुसार अब भूमि पर कोई पाप न होगा और ईश्वर और ईसा सिंहासन पर निरन्तर बैठे रहेंगे। पर क्या इस ईश्वर और ईसा का मुँह गोरा, काला, पीला चिपटा कैसा होगा, पृथ्वी के देशों के अनुसार। ईश्वर कहता है कि "मैं शीघ्र आता हूँ और जैसा कर्म करेगा, वैसा फल दूँगा।" तब ईसा सबके पाप सिर पर लेकर सूली चढ़ गया—यह बात सर्वथा मिथ्या हुई।

⊙

बाइबल जंगली पुस्तक है, इसे जंगली युग में जंगली लोगों के लिए लिखा गया था—

—डीन फैरर

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

यमन मत समीक्षा

इस समुल्लास की अनुभूमिका में महर्षि दयानन्द लिखते हैं :—

"जो कुरान अरबी भाषा में है उस पर मौलवियों ने उर्दू पर अर्थ लिखा है। उस अर्थ का देवनागरी अक्षर और आर्यभाषान्तर करवा के पश्चात् अरबी के बड़े-बड़े विद्वानों से शुद्ध करा के लिखा गया है। यदि कोई कहे कि यह अर्थ ठीक नहीं है तो उसको उचित है कि मौलवी साहबों के तर्जुमों का पहले खंडन करे, पश्चात् इस विषय पर लिखें।"

पक्षपात छोड़कर विचार आवश्यक

महर्षि ने किस विशुद्ध और सत्य की खोज करने के भाव से ही इस समुल्लास का प्रारम्भ किया है, यह उनके निम्न शब्दों से सर्वथा स्पष्ट है :—

"यह लेख केवल मनुष्यों की उन्नति और सत्यासत्य के निर्णय के लिए सब मतों के विषयों का थोड़ा-थोड़ा ज्ञान होवे, इससे मनुष्यों को परस्पर विचार करने का समय मिले और एक दूसरे के दोषों का खंडन कर गुणों को ग्रहण करें, न किसी अन्य मत पर, न इस मत पर झूठ-मूठ बुराई या भलाई लगाने का प्रयोजन है, किन्तु जो जो भलाई है वही भलाई और जो बुराई है, वही बुराई सबको विदित होवे, न कोई किसी पर झूठ चला सके और न सत्य को रोक सके, और सत्यासत्य विषय प्रकाशित किये पर भी जिसकी इच्छा हो वह न माने वा माने, किसी पर बलात्कार नहीं किया जाता, और यही सज्जनों की रीति है कि अपने वा पराये दोषों को दोष और गुणों को गुण जानकर गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग करें और हठियों का हठ दुराग्रह न्यून करें, क्योंकि पक्षपात से क्या-क्या अनर्थ जगत् में न हुए और न होते हैं। सच तो यह है कि इस अनिश्चित क्षणभंगुर जीवन में पराई हानि करके लाभ से स्वयं रिक्त रहना

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
और अन्य को रखना मनुष्यपन से बहिः है। इसमें जो कुछ विरुद्ध लिखा गया हो, उसको सज्जन लोग विदित कर देंगे, तत्पश्चात् जो उचित होगा तो माना जाएगा, क्योंकि यह लेख हठ, दुराग्रह, ईर्ष्या, द्वेष, वाद-विवाद और विरोध घटाने के लिए किया गया है, न कि इनको बढ़ाने के अर्थ, क्योंकि एक-दूसरे की हानि करने से पृथक् रह परस्पर को लाभ पहुँचाना हमारा मुख्य कर्म है।"

अपने मुख से अपनी किताब की प्रशंसा

"आरम्भ साथ नाम अल्लाह के क्षमा करने वाला दयालु" कुरान के मंजिल १, सिपारा २, सूरत, के यह शब्द बताते हैं कि इसका बनाने वाला कोई दूसरा है क्योंकि जो परमेश्वर का बनाया होता तो "आरम्भ साथ नाम अल्लाह के"— ऐसा न कहता किन्तु "आरम्भ वास्ते उपदेश मनुष्यों के" ऐसा कहता। इसलिए कुरान खुदा का कहा है, मुसलमानों का यह सिद्धान्त ठीक नहीं है। आयत ३, ४ ५, में कहा गया है "मालिक दिन न्याय का ····दिखा हमको सीधा रास्ता"—क्या खुदा नित्य न्याय नहीं करता, किसी एक दिन न्याय करता है? इससे तो अन्धेरा विदित होता है। क्या बुरी बात के लिए उससे सहायता चाहनी है और सूधा मार्ग एक मुसलमानों ही का है या दूसरे का भी? आयत ६-७ में "उन लोगों का रास्ता कि जिन पर तूने नियामत की और उनको मार्ग मत दिखा कि जिनके ऊपर तूने गजब अर्थात् क्रोध की दृष्टि की और न गुमराहों का मार्ग हमको दिखा—।" जब मुसलमान पूर्व जन्म और पूर्व कृत पाप-पुण्य नहीं मानते तो किन्हीं पर नियामत और किन्हीं पर न करने से खुदा पक्षपाती हो जाएगा। सूरत २, आयत १ से ६ तक में अपने ही मुख से अपनी ही प्रशंसा करना क्या खुदा की दम्भ की बात नहीं? जब परहेजगार अर्थात् धार्मिक लोग हैं वे तो स्वतः सच्चे मार्ग में हैं और जो झूठे मार्ग पर हैं उनको यह कुरान मार्ग ही नहीं दिखला सकता, फिर किस काम का रहा? क्या पाप पुण्य और पुरुषार्थ के बिना खुदा अपने ही खजाने से खर्च करने को देता है? जो देता है, तो सबको क्यों नहीं देता? जो परमेश्वर ही ने उनके अन्तःकरण और कानों पर मोहर लगाई और उसी से वे पाप करते हैं, तो उनका कुछ भी दोष नहीं, यह दोष खुदा का ही है। आयत ९ के अनुसार अल्लाह ने उनका रोग बढ़ा दिया। भला बिना अपराध के खुदा ने उनका रोग बढ़ाया, दया न आयी। आयत २१

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

में पृथ्वी बिछौना और आसमान को छत बताया गया है। आकाश को छत के समान मानना अविद्या की बात है। आयत २२-२३ के अनुसार पैगम्बर पर उतरी आयत पर सन्देह करने वालों को दोजख की आग का डर दिखाया गया है। यह दोजख की आग कहां पर है ? जब काफिरों के लिए पत्थर तैयार किये गये हैं तो पुराणों के अनुसार म्लेच्छों के लिए घोर नरक बना है। किसकी बात सच्ची मानी जाए ?

यह कैसा बहिश्त?

सूरत २, आयत २४ में बहिश्त का वर्णन करते हुए कहा गया है कि जहाँ नहरें चलती हैं, मेवों का भोजन दिया जाता है और बीवियाँ सदैव वहाँ रहने वाली हैं। भला यह कैसा बहिश्त क्योंकि ये सब वस्तुएं इस संसार में भी मिल जाती हैं। बहिश्त में बीवियाँ सदा रहती हैं, जन्मती—मरती नहीं। तब कयामत की रात न आने तक उनके दिन कैसे कटते होंगे ? मुसलमानों का यह बहिश्त तो गोकुलिये गोसांइयों के गोलोक के सदृश प्रतीत होता है। बाबा आदम को सब ने दंडवत् किया पर शैतान ने नहीं किया क्योंकि वह काफिर था (आयत ३२)। क्या खुदा सर्वज्ञ नहीं ? अगर जानता था तो शैतान को पैदा ही क्यों किया ? एक शैतान ने ही खुदा के छक्के छुड़ा दिये, तो कौन बड़ा हुआ ? आयत ३३, ३४, ३५ के अनुसार खुदा ने आदम को वृक्ष के पास जाने से रोका था पर शैतान ने उसको बहका कर बहिश्त से पृथ्वी पर भिजवा दिया। यह तो खुदा की अल्पता है। अभी तोब हिश्त में रहने का आशीर्वाद दिया और अभी वहाँ से निकाल दिया। वह वृक्ष किसने और किसके लिए पैदा किया था ? आदम पृथ्वी पर कैसे आया ? यह बहिश्त आकाश में है वा पहाड़ पर? वहाँ से आदम कैसे उतरा ? आयत ४६ के अनुसार जब सिफारिश नहीं मानी जाएगी तब फिर पैगम्बर को मानने व उसकी गवाही और सिफ़ारिश की क्या जरूरत है ? आयत ५०-६१ के अनुसार जब मूसा को किताब दी तब कुरान निरर्थक हो गया। क्या मूसा को दी गयी किताब को खुदा भूल गया था ? जब खुदा ने बन्दर हो जाने के लिए कहा, और यह केवल भय था, तो खुदा का वचन मिथ्या हो गया।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

खुदा पाप कैसे क्षमा कर सकता हैं?

आयत ६७ के अनुसार खुदा मुर्दों को जिलाता है, तो अब क्यों नहीं जिला देता ? कयामत तक कब्रों में पड़े सड़ते रहेंगे ? आयत ७५ के अनुसार वे सदा बहिश्त में रहेंगे। कोई भी जीव अनन्त काल के लिए स्वर्ग या नरक में नहीं रह सकता। जब कर्म नहीं, तब उसका फल अनन्त कैसे हो सकता है ? आयत ७६ के अनुसार उनके पाप कभी हलके नहीं किये जाएंगे और न उन्हें सहायता दी जाएगी। भला ऐसी ईर्ष्या-द्वेष की बातें खुदा की ओर से हो सकती हैं ? जिन लोगों के पाप हलके किये जाएंगे व सहायता दी जाएगी, वे कौन हैं ? क्या वे पापी हैं ? क्या पापों का दंड दिए बिना वे हलके किए जाएंगे ? आयत ८२ के अनुसार काफिरों पर लानत है। तुम जिन्हें काफिर कहते हो, वे तुम्हें काफिर कहते हैं। किसका ईश्वर सच्चा और किसका झूठा है ? जब खुदा ला शरीफ़ है तब फरिश्तों की यह फौज कहाँ से उतर आयी ? क्या जो औरों का शत्रु है वह खुदा का भी शत्रु है ? खुदा तो किसी का शत्रु हो नहीं सकता। आयत ६४ के अनुसार खुदा पाप क्षमा करता है। क्या इससे संसार में पाप नहीं बढ़ेगा ? मूसा को कहा कि पत्थर पर डंडा मार और उससे पानी के बारह चश्मे वह निकले (आयत ६६)। पत्थर तो अब भी पहाड़ों पर ढेर पड़े हैं। डंडा मारने से क्या पानी निकल आएगा ? खुदा जिस पर चाहता है, दया करता है (आयत ६७)। तब तो वह बड़ा गड़बड़िया है।

खुदा और काफिर

काफिर ईर्ष्या करके तुम्हें ईमान से फेर देवेंगे (आयत १०१)। खुदा को स्वयं अपनी शक्ति पर विश्वास नहीं, काफिरों से डरता है। तुम जिधर मुँह करो, उधर ही अल्लाह है (आयत १०७)। फिर मुसलमान काबे की ओर मुँह क्यों करते हैं ? खुदा ने कहा और बस सब कुछ हो गया (आ० १०६) हुक्म किसने दिया और किसको सुनाया और कौन, किस कारण से बन गया जब कि सृष्टि के आदि में खुदा के सिवाय कोई नहीं था। जब हमने काबे का पवित्र स्थान सुख देने वाला बनाया तो तुम नमाज के लिए उस स्थान को पकड़ो (आयत ११७) क्या काबे के पहले कोई पवित्र स्थान खुदा ने नहीं

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

बनाया था व बनाने की जरूरत नहीं थी। इब्राहीम के दीन का न मानने वाले मूर्ख हैं पर इब्राहीम को ही खुदा ने क्यों पसन्द किया? धर्मात्मा तो और भी लोग हो सकते हैं। आयत १३५ के अनुसार पैगम्बर कहता है कि निश्चय ही हम तेरे मुख को आसमान में फिरता देखते हैं, अवश्य हम तुझे उस किबले को फेरेंगे कि पसन्द करे (आ० १२५) क्या यह बुतपरस्ती नहीं है। मुसलमान कैसे अपने को बुत शिकन कह सकते हैं?

रोजे के दिनों में स्त्री से समागम की छूट

आयत १५६ के अनुसार "तुम पर मुर्दार, लोहू, और गोश्त सूअर का हराम है और अल्लाह के बिना जिस पर कुछ पुकारा जाता"—मुर्दा चाहे आप से आप मरे व किसी के मारने से मरे—दोनों बराबर हैं। जब एक सूअर का निषेध किया तो क्या मनुष्य का मांस खाना उचित है? आयत १७२ के अनुसार रोजे के दिनों में भी स्त्री से समागम करने के लिए कहा गया है। हिन्दुओं में तो व्रत के दिन समागम निषिद्ध है, पर मुसलमानों को खुली छुट्टी दे दी गयी। दिन में न खाकर रात में खाना सृष्टि क्रम के विरुद्ध है।

काफ़िरों को मार देने का कुरान में आदेश

आयत १७४ से १७६ के अनुसार काफिरों से लड़ने और उन्हें मार देने के लिए कहा गया है। कतल से कुफ्र बुरा है। तुम उन पर खूब ज्यादती करो? कुरान की इस शिक्षा के फलस्वरूप हा इस्लाम ने दुनिया में इतने भयंकर अत्याचार किये हैं। काफिरों का मार देने के लिए जब ऐसी आज्ञा हैं, तब शान्ति कैसे हो सकती है? आयत १६०-१६३ के अनुसार इस्लाम में प्रवेश करने के लिए प्रेरणा दी गयी है। मुसलमानों को इस प्रकार हिंसा के लिए प्रेरित किया गया है। आयत २०५ से २०८ तक "तुम्हारी बीवियाँ तुम्हारे लिए खेतियाँ हैं, बस जाओ जिस तरह चाहो अपने खेत में—" यह तो व्यभिचार की खुली छूट है। आयत २२७ के अनुसार अल्लाह उधार माँगता है और देने वाले का दुगुना हो जाएगा। जिस खुदा ने संसार को बनाया उसे कर्ज लेने की भला क्या जरूरत? क्या वह हुंडियों का व्यापार करता है? आयत २३५ के अनुसार जहाँ लड़ाई होती है वह अल्लाह की मर्जी से हा होती है। खुदा की

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

कुर्सी आसमान पर है। तब तो खुदा एक देशी हो जाएगा। खुदा सूर्य को पूर्व से लाता है, तू पश्चिम से ले आ, काफिर हैरान हो जाएंगे (आ० २४०) सूर्य न पूर्व से न पश्चिम से कभी आता है, वह तो अपनी परिधि में घूमता है। काफिर हैरान क्यों होंगे क्योंकि ईश्वर के नियम किसी भी पैगम्बर से ऊंचे हैं।

गैर मुसलमानों को मार दो

सिपारा ३, सूरत ३, आयत २१ से २७ तक मुसलमानों को कहा गया कि काफिरों को मित्र न बनावें, मुसलमानों को ही दोस्त बनावें। अल्लाह चाहेगा, तुम्हारे पाप क्षमा हो जाएंगे। यह तो खुदा का पक्षपात है कि सिर्फ मुसलमानों से ही दोस्ती करें। अगर कहीं मिली-जुली आबादी हो तो क्या मुसलमान केवल अपनों से दोस्ती करके रह सकेंगे ? आयत ३५ के अनुसार इस्लाम इसाई मत के बाद आया, क्योंकि मरियम का अल्लाह ने आशीर्वाद दिया। आयत ११० के अनुसार अल्लाह तीन हजार फरिश्तों के साथ सहायता देता है। इतने फरिश्तों के होते हुए इस्लाम की तबाही क्यों हुई और बादशाहत कैसे नष्ट हो गयी ? आयत १७८ के अनुसार अल्लाह ईमान वालों को लड़ाई में लगे रहने के लिए कहता है। इस्लाम का खुदा और पैगम्बर — दोनों लड़ाईबाज ही थे — और शान्ति भंग करने वाले थे। आयत १३-१४ के अनुसार खुदा ने मुहम्मद साहब को अपना साझीदार बना लिया है और बहिश्त में दोनों हिस्सेदार हैं। इस्लाम का खुदा स्वतंत्र नहीं हैं। आयत ८०-८७ के अनुसार खुदा स्वयं जीवों को गुमराह करता है, तब शैतान को दोषी ठहराने से क्या लाभ ? आयत ६०-६२ के अनुसार मुसलमान मुसलमान को न मारे और जो मुसलमान को मारेगा वह दोजख में रहेगा। क्या विचित्र न्याय ? गैर मुसलमान को तो जहाँ पकड़ो मार दो पर मुसलमान दूसरे मुसलमान को न मारे। अगर मुसलमान को मारने से दोजख मिलता है तो इतिहास में मुसलमान राजाओं ने मुसलमानों को क्यों मारा ? आयत १३४-१३५ के अनुसार तीन बार क्षमा करने के बाद खुदा क्षमा नहीं करता ? क्यों नहीं क्षमा करता ? इसका मतलब यही है कि तीन बार तो कुछ कर ही लेना चाहिए, बाद को देखा जाएगा।

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

शैतान ने सिजदा नहीं किया

मंजिल २, सिपारा ७, सूरत ५, आयत ९२ के अनुसार अल्लाह ने अब माफ कर दिया, फिर करेगा तो अल्लाह बदला लेगा। पापों को क्षमा करना पापों को बढ़ाना है। अल्लाह पापों को बढ़ावा देता है क्षमा करके। आयत ९४ से पता चलता है कि जब मुहम्मद साहब कहते थे कि मेरे पास खुदा की ओर से आयतें आती हैं, तब कोई नकली मुहम्मद बन कर लीला करता होगा। इसीलिए इस आयत में अल्लाह इस नकलची को पापी कहता है। वस्तुतः, मुहम्मद साहब ने अपनी प्रतिष्ठा को बढ़ाने के लिए यह ढोंग रचा होगा। आयत १० से १७ तक खुदा ने फरिश्तों से कहा कि आदम को सिजदा करो, उन्होंने किया पर शैतान ने नहीं किया। जब शैतान सबको गुमराह करता है, तब खुदा ने उसे क्यों छोड़ दिया? शैतान खुदा से न दबा और अपने को आदम से अच्छा कहता है क्योंकि आदम मिट्टी से बना और शैतान आग से। तब इस खुदा की पूजा क्यों की जाय? आयत ५३-५४ के अनुसार खुदा ने आसमान और पृथ्वी को ६ दिन में बना दिया और खुद अर्श पर रहा। छः दिनों तक दुनिया बनाकर ७वें दिन अर्श पर आराम करता रहा। क्या अब तक वह सो रहा है क्योंकि दुनिया तो बन चुकी!!

अल्लाह मुसलमानों के साथ हैं

आयत १३० से १३८ तक खुदा कहता है कि हमने उनपर मेह का तूफान, टिड्डी, चिचड़ी, मेंढक और लहू भेजा और दरिया में डुबो दिया। खुदा कितना पक्षपाती है कि एक को पार कर दे और दूसरे को डुबो दे। ऐसा खुदा खुद ही अधर्मी है। उस समय कौनसा दूसरा मजहब था जिस पर ये अत्याचार कए गए? मंजिल २, सिपारा ६, सूरत ८, आयत १ के अनुसार अल्लाह के वास्ते लूटो और डरो अल्लाह से। एक ओर तो लूट की छूट दी जा रही है और दूसरी ओर अल्लाह से डरने को भी कहा जा रहा है। आयत ७, ६, १२ में काफिर की जड़ काटने और उनकी गर्दन मारने के लिए कहा गया है और खुदा अपने फरिश्तों की फौज से सहायता करेगा। इस प्रकार का हत्याकांड करने वाला खुदा किस काम का? अल्लाह मुसलमानों के साथ है (आयत

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

१९ से ३० तक) ईश्वर तो सम्पूर्ण सृष्टि का है, सिर्फ मुसलमानों का क्यों ? खुदा रसूल और अमानत का चोरी न करने के सिवाय सबकी चोरी करने की इजाजत देता है। क्या ऐसा अल्लाह निष्पक्ष हो सकता है ? आयत ६३ ६८ के अनुसार खुदा लूट की वस्तु खाने की इजाजत देता है और वह क्षमा कर देगा। एक ओर लूट की छुट्टी और दूसरी ओर क्षमा का प्रलोभन—तब संसार में पाप क्यों न बढ़ेगा ?

खुदा ने आदम में रूह फूँकी

मंजिल ३, सिपारा, ११, सूरत ११, आयत ४३ से ६३ के अनुसार खुदा ने कहा कि पृथिवी पानी निगल जा और आसमान बसकर, पानी सूख गया, अल्लाह की निशानी ऊँटनी पृथिवी पर खाती फिरती है। क्या पृथिवी आकाश किसी की बात सुनते हैं ? खुदा की जब ऊँटनी है तो ऊँट भी होगा। हाथी, घोड़े, गधे भी होंगे। क्या अल्लाह ऊँटनी पर चढ़ता है? अल्लाह ने खड़ा किया आसमान को बिना खम्बे के और अर्श पर सूरज चाँद लगा दिए, पृथिवी को बिछा दिया, अल्लाह जिसको चाहे भोजन देता है और तंग करता है। (मंजिल ३, सिपारा १३, सूरत १३, आयत २ से २६)। मुसलमानों का खुदा विज्ञान नहीं जानता। आसमान को बिना खम्भे, सूरज चांद लगा देने की बेतुकी हाँकता है। अगर कुरान का लेखक मेघ विद्या को जानता तो यह सब न लिखता। कुरान उतारा हमने (आयत ३७ ४०)। कहाँ से और किधर से उतारा ? क्या खुदा एक देशी है। जब वह एक देशी है तभी हिसाब लेता देता है। सूर्य चन्द्र सदा फिरने वाले (आयत ३३ ३४) क्या सूर्य चन्द्र फिरते हैं और पृथ्वी नहीं फिरती है ? सूर्य कैसे फिरता है और चन्द्रमा कैसे, इस पर कुरान का अल्लाह चुप है। आयत ३९ से ४६ तक खुदा ने आदम में रूह फूँक दी। रूह किस रास्ते फूँकी ? कान के, नाक के, व आँख के ? आयत ५६-६२ के अनुसार अल्लाह अपनी बेटियाँ भेजता है और भेजे पैगम्बर। भला बेटियों और पैगम्बर को भेजने का क्या मतलब ? पैगम्बर बेटियों से क्या करेगा ?

खुदा की ऊटनी

मंजिल ४, सिपारा १५, सूरत १७, आयत ७, १२, १६ के अनुसार काफिरों को घेरने के लिए दोजख बनाया खुदा ने, उनकी गर्दन उसमें फँसी

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रहेगी और कियामत के दिन फैसला होगा। कुरान के अल्लाह की दृष्टि में काफिर वही है जो कुरान, पैगम्बर और नमाज को न मानें। अगर कियामत की रात को ही खुदाने किताब खोलनी है तो आजकल वह किताब कहाँ पर है? जब पूर्वजन्म नहीं तो खुदा किस कसौटी पर फल देगा ? अगर अपनी मरजी से,तो उससे अन्याय होगा। आयत ५७,६२,६९ के अनुसार खुदा की ताकत की निशानी एक ऊँटनी भी है। पता नहीं खुदा को ऊँटनी से इतना प्रेम क्यों है ? और जहां ऊँटनी न हो वहाँ खुदा की ताकत की निशानी क्या होगी ? आयत ३० के अनुसार स्वर्ग में बाग, गहने, कपड़े गद्दी, तकिये मिलेंगे पर इसमें किसी मकान और पलंग का तो जिक्र करना खुदा भूल गया। आयत ७८, ८४, ९२ के अनुसार सूर्य चश्मे के कीचड़ में डूबता है। सूर्य तो पृथ्वी से बहुत बड़ा है वह भला कैसे एक कीचड़ भरे चश्मे में डूब सकता है ? आयत ७८ के अनुसार तोबाः करने वाले को खुदा माफ कर देता है। सचमुच, पाप से छूटने का बड़ा सस्ता तरीका है। इससे पाप की वृद्धि होती है। आयत ३० में कहा है कि पहाड़ इसलिए बनाये हैं जिससे पृथ्वी न हिले। कुरान नहीं जानता कि पहाड़ पृथ्वी पर कील के सदृश नहीं है। फिर भी, भूकम्प आने पर पृथ्वी क्यों हिल जाती है ? आ० ८८ में कहा है कि औरत के गुप्त अंगों में फूँक दे दी है और वह उसकी रूह है। ऐसी अश्लील चर्चा कुरान में क्या शोभा देती है ? क्या गुप्त अंगों में फूँक देने की खास जरूरत थीं। आयत १९, २३, २५, ३० ३३ के अनुसार स्वर्ग वह है जहाँ सोने-मोती के गहने और रेशमी कपड़े पहनने को मिलें। यह बहिश्त हैं या किसी राजा का घर ? वहाँ खुदा भी रहता होगा। यह उसकी बुतपरस्ती हुई। जब कयामत में उठाये जायेंगे, तब तक कहाँ रहेंगे ? क्या शरीर में से दुर्गन्ध नहीं आएगा ? आयत २३-२४ के अनुसार उस दिन उनके हाथ पैर गवाही देंगे। भला जड़ वस्तु कैसे गवाही दे सकती हैं? आयत ५०-५१, ७६, ७७, ८० के अनुसार जब खुदा ने मूसा को बही भेजी तो फिर दाऊद, ईसा, मुहम्मद को क्यों भेजी ? कुरान का भेजा जाना पहली पुस्तकों की अपूर्णता सिद्ध करता है।

मुहम्मद साहब ने बेटे की स्त्री को अपनी स्त्री बनाया

मंजिल ५, सिपारा २१,सूरत ३०,आयत १०, ११,१४,५०,५८ के अनुसार

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अल्लाह दो बार उत्पति करता है तीसरी बार नहीं, तो दूसरी बार के अन्त में क्या निकम्मा बैठा रहता है ? जब बहिश्त में सोना मिलता है, किसी को कम, किसी को ज्यादा, तब वहाँ चोरी भी होती होगी। आयत ४, ५, ७, ६, ११ के अनुसार खुदा एक जगह से दूसरी जगह प्रबन्ध करने के लिए जाता है। वह एक देशी हुआ। वह फरिश्तों को दौड़ाता है। अगर फरिश्ते रिश्वत लेकर कोई मामला बिगाड़ दें या मुर्दे को छोड़ जाएं, तो खुदा को कैसे पता लगेगा ? आयत १२६ के अनुसार यदि कोई बीबी निर्लज्जता से मुहम्मद साहब के पास न आवे तो क्या पैगम्बर साहब निर्लज्ज होकर आएंगे ? आयत ३३, ३७, ३८, ४०, ४७, ४८, ५० के अनुसार स्त्री घर में कैद रहे और पुरुष खुल्ले रहें। मुहम्मद साहब ने लेपालक बेटे की स्त्री को जो पुत्र की स्त्री थी, अपनी स्त्री बना लिया। क्या खुदा अन्यायी नहीं सिद्ध होगा ? जैसे पैगम्बर साहब के घर में कोई पर-पुरुष प्रवेश न करे, वैसे पैगम्बर को भी दूसरों के घर में नहीं जाना चाहिए। खुदा का आदेश अत्यन्त पक्षपात है कि बिना मिहर के नबी के वास्ते स्त्री दे देवे। आयत १-२ के अनुसार खुदा कुरान की कसम खाता है। अगर कुरान खुदा का बनाया होता तो वह इसकी सौगन्ध क्यों खाता ?

बहिश्त में शराब की नदियां

मंजिल ६, सिपारा २३, सूरत ३७, आयत ४३, ४४, ४६, ४७, ५६, १२६, १२७, १२८, १२६ के अनुसार बहिश्त में शराब की नदियाँ बहती हैं। यहाँ मुसलमान शराब पीना बुरा मानते हैं पर बहिश्त में उसकी छूट है। अगली १२ आयतों के अनुसार बहिश्त का आकर्षक वर्णन है। संयोग से बनी चीज कभी स्थिर नहीं हो सकती। बहिश्त भी संयोग जनित है। वह कभी स्थिर नहीं रह सकता। शैतान ने खुशामद करके जब खुदा की कैद से छुटकारा पा लिया, तब उसने खुदा से कहा कि अब लोगों को खूब बहकाऊंगा और ऊधम करूंगा। खुदा ने कहा कि तू जिसे बहकावेगा, मैं उसे दोजख में डाल दूंगा। शैतान खुदा के काबू नहीं आता, तब यह संसार कैसे उसके काबू आएगा ? आयत १२, २०, २१, ३६ के अनुसार खुदा ने सात आसमानों को दो दिन में बना सका। क्या यही वह सर्वशक्तिमान् खुदा है ? खुदा आसमानों और

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
पृथ्वियों की कुंजिय संभाले हैं, जब चाहता है, खोलता, बन्द करता है। (आयत १०, ४७, ४८, ४९) यह कुंजियां काहे की बनी हैं, ताले काहे के हैं ?

खुदा तख्त पर बैठा है

मंजिल ७, सिपारा २७, सूरत ५६ की ४ से ७५ तक की आयतों के अनुसार पृथ्वी हिलती रहती है। क्या जब बनाई थी, तब भी हिलती थी ? बहिश्त के पलंग आदि के लिए बढ़ई भी वहाँ होंगे ? बीच-बीच में निकम्मे बैठे रहते होंगे। उनके मल-मूत्रादि होने से रोग भी पैदा होते होंगे। यह बहिश्त क्या हुआ, किसी बादशाह का राज्य हुआ। अगली आयतों में खुदा कहता है कि काफिरों से झगड़ा करो। क्या इससे शान्ति स्थापित होगी ? आयत १६ से २५ तक कहा है कि आकाश फट जाएगा। क्या आकाश कपड़े के सदृश है जो फट जाएगा। खुदा तख्त पर बैठता है जिसे आठ कहार उठाते हैं। कहार कहाँ खड़े हुए हैं ? यह खुदा निश्चय ही शरीरधारी है। अगली आयतों में कहा है कि मसजिद में से अल्लाह के साथ किसी को मत पुकारो। पर मुसलमान तो कलमे में पुकारते हैं "ला इलाइ इल्लिल्ला: मुहम्मद रसूल लल्लहा "इस कलमे में खुदा के साथ मुहम्मद साहब का नाम क्यों पुकारते हैं ? यह कुरान के विरुद्ध है। आयत २६, ३४, ३८ में कहा गया है कि कयामत के दिन वह और फरिश्ते साफा बांध कर खड़े होंगे। साफा कब और कौन बनाएगा। ऊँटनी को पानी पिलाने के लिए कहा गया है। कियामत के दिन क्या ऊँटनी सैर करने निकलेगी ? आयत १५ के अनुसार पापियों को खुदा के चपड़ासी घसीटेंगे।

क्या इस्लाम अथर्व वेद से निकला है ?

कई मुसलमान कहते हैं कि हमारा मजहब अथर्व वेद से निकला है पर अथर्व वेद में इसका नामो निशाँ भी नहीं है। मुसलमान इस उपनिषद के शब्द इस प्रकार बताते हैं।

१ प्रश्न) अथ्थाऽल्लोपनिषादं व्याख्यास्याम;

अस्माल्लाँ इल्ले मित्रावरूणा दिव्यानिधन्त्ते इल्लल्ले वरुणं राजा पुनर्दंदुः। हया मित्रोइल्लाँ इल्लल्ले इल्लाँ वरुणे मित्रस्तेजस्काम : ॥१॥ होतारमिन्द्रो

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai
होतार मिन्द्र महासुरिन्द्राः । अल्लो ज्येष्ठं श्रेष्ठं परमं पूर्णं ब्रह्मणं अल्लाम् ।२ अल्लो रसूल महामदरकबरस्य अल्लो अल्लाम् ।।३।। आदल्लाबूकमेककम् अल्ला बूक निखातकम् ।।४।। अल्यो यज्ञेन हुतहुत्वा। अल्ला सूर्य चन्द्र सर्व नक्षत्राः ।।५।। अल्ला ऋषीणाँ सर्व दिव्याँ इन्द्राय पूर्वं माया परमन्तरिक्षाः ।।६।। अल्लः पृथिव्या अन्तरिक्षं विश्वरूपम् ।।७।। इल्लाँ कबर इल्लाँ कबर इल्लाँ इल्लल्लेति इल्लल्ला ।।८।। ओम् अल्ला इल्लल्लाह अनादि स्वरूपाय अथर्वणां श्यामा हुं ह्रीं जनानपशुनसिद्धान् जलचरान् अष्टं कुरु कुरु फट ।।९।। असुर संहारिणी हुँ ह्रीं अल्लो रसूल यह मदर कबरस्य अल्लो अल्लाम इल्लल्लेति इल्लल्लाः ।।१०।।

इलल्लोपनिषद् समाप्ता

जो इसमें प्रत्यक्ष मुहम्मद साहब रसूल लिखा हैं, इससे सिद्ध होता है कि मुसलमानों का वेद धर्म मूलक है।

यह दावा एकदम झूठा है

उत्तर—अथर्व वेद देख लो, २० काँड युक्त मंत्र संहिता, उसमें कहीं पैगम्बर साहब का नाम नहीं है। यह अल्लोपनिषद न अथर्व वेद में न उस के गोपथ ब्राह्मण या किसी शाखा में है। अकबर के समय अनुमान है, किसी ने बनाई है। इसके बनाने वाला कुछ अरबी कुछ संस्कृत भी पढ़ा हुआ दीखता है। क्योंकि अरबी और संस्कृत के पद लिखे हुए दीखते हैं।............यदि इसका अर्थ देखा जाता है तो यह कृत्रिम प्रयुक्त वेद और व्याकरण की रीति के विरुद्ध है। जैसी यह उपनिषद बनाई है वेसी बहुत सी उपनिषदें मतमताँतर वाले पक्ष पातियों ने बना ली है, जैसी कि स्वरोप-निषद, नृसिह तापनी, रामतापनी, गोपाल तापनी बहुत सी बना ली हैं।

महर्षि की एकमात्र कामना

महर्षि दयानन्द इस समुल्लास के अंत में लिखते हैं:—

हम तो यही मानते हैं कि सत्य भाषण, अहिंसक और दया आदि शुभगुण सब मतों में अच्छे हैं, बाकी वाद विवाद, ईर्ष्या द्वेष, मिथ्या भाषणादि कर्म सब मतों में बुरे हैं। यदि तुम को सत्यमत ग्रहण की इच्छा हो तो वैदिक मत को ग्रहण करो।

———

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

धर्म-ज्योति प्रसार के लिए

वैदिक साहित्य बांटिए

१. वेद ज्योति, प्रत्येक वेद के १००-१०० मंत्रों का अर्थ सहित संग्रह ३)
२. मूर्तिपूजा की हानियाँ—(महर्षि दयानन्द) १५ पैसे १०) सैंकड़ा।
३. गीत मंजरी ईश्वर भक्ति के गीतों का संग्रह : ··· ···८० पैसे
४. नवयुवक प्रवर्तक—महर्षि दयानन्द – २० चित्रों सहित, अनुपम जीवन-गाथा, ऋषि का तिरंगा चित्र।························मूल्य १)
५. The Vedic way of Life, L. Dewan Chand १)
६. Layers of Life २)
७. Ten Commandments – भूपति एम० ए० १)
८. यज्ञ प्रसाद—महात्मा आनन्द स्वामी ···················४० पैसे
९. आर्य समाज की मान्यतायें— स्व० पं० रामचन्द्र देहलवी। १०) सैंकड़ा
१५ पैसे १०) सैंकड़ा
१०. विश्व को वेद का संदेश—पं. भारतेन्द्र नाथ १५ पैसे १०) सैंकड़ा
११. आर्य समाज क्या मानता है ?—मदनमोहन विद्यासागर १० पैसे,
१२. माँ गायत्री—गायत्री मन्त्र की अनुपम व्याख्या···············७५ पैसे
१३. महर्षि दयानन्द की विशेषताएँ—नारायण स्वामी १५ पैसे १०) सैंकड़ा
१४. प्रार्थना मन्त्र व्याख्या—हरिशरण सिद्धान्तालंकार ··········४० पैसे
१५. क्राँतिकारी दयानन्द – सन्तराम ए० ए० सी०···············७५ पैसे
१६. वर्ण व्यवस्था का वैदिक स्वरूप—शिवकुमार शास्त्री २५ पैसे
१७. Swami Dayananda on untouchability १५ पैसे १०) सैंकड़ा
१८. वैदिक भक्तिवाद पं. जगत्कुमार शास्त्री २५ पैसे १५) सैंकड़ा
१९. वैदिक गीता – स्वामी आत्मानन्द जी सरस्वती २)
२०. वैदिक सत्संग पद्धति—अर्थ सहित हिन्दी में ५० पैसे
२१. Vedic Prayer – अंग्रेजी और हिन्दी में अन्वय सहित २)
२२. Vedic Sandhya ४० पैसे
२३. Message of the Aryasamaj to the universe ३० पैसे

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

अराष्ट्रीय ईसाई विरोधी साहित्य : मँगाएँ—बांटें

१.	ईसाई पादरी उत्तर दें।		३) सैंकड़ा
२.	A challange to the christian Faith		३) सैंकड़ा
३.	Bible in the Balance	२० पैसे	१५) सैंकड़ा
४.	ज्ञान-विज्ञान के शत्रु ईसाई मत	१५ पैसे	१०) सैंकड़ा
५.	पोप की सेना का भारत पर हमला		१०) सैंकड़ा
६.	ईसाइयों की प्रचार प्रणाली	१५ पैसे	१०) सैंकड़ा
७.	पादरियों को चुनौती	१५ पैसे	१०) सैंकड़ा
८.	बाइबल को चुनौती	२० पैसे	१५) सैंकड़ा
९.	और पादरी भाग गया	१५ पैसे	१०) सैंकड़ा
१०.	ईसाइयत की वास्तविकता		१०) सैंकड़ा
११.	बाइबल कसौटी पर······	२५ पैसे	१५) सैंकड़ा

जन-ज्ञान प्रकाशन

१५९७, हरध्यानसिंह मार्ग, नई दिल्ली-५

दीपावली पर मेरा आग्रह स्वीकार कीजिए

आर्य जन ! वेद प्रचार में आपका जो स्नेह सहयोग मेरी प्रार्थना पर 'जनज्ञान' को मिला है उसके लिए मैं हृदय से आभारी हूँ।

मेरी प्रार्थना है कि आप दीपावली के दिन 'जन-ज्ञान के आजीवन सदस्य १०१) भेज कर बनें। इससे जहाँ हमें आगे बढ़ने में सहारा मिलेगा वहाँ आपको जीवन भर 'जन-ज्ञान' भी सादर मिलता रहेगा।

धन के अभाव में जो योजनाएँ रुकी हैं वे पूरी होंगी और वेद का संदेश फैलाने का आप को पुण्य भी प्राप्त होगा। उत्साह, विश्वास और आगे बढ़ने की भावना से मेरा यह छोटा सा आग्रह स्वीकार कर **१०१) आज ही भेजिए।**

आर्य जन !············मैं आपके सहयोग को पाकर बढ़ रहा हूं। बढ़ता रहूंगा········परमात्मा हमें शक्ति दे········वेद प्रचार-यज्ञ में १०१) आहुति रूप में दीजिए—यह मेरी सानुरोध प्रार्थना है—

विनीत

भारतेन्द्र नाथ

सम्पादक—मुद्रक—प्रकाशक—राकेशरानी द्वारा कैसलन प्रेस—

डिलाइट प्रेस—ईगल प्रेस दिल्ली में छपा

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

प्रभो ! तेरी इच्छा पूर्ण हो" कह दीपावली के दिन ऋषि दयानन्द ने देह त्याग दिया। गुरुदत्त-सा नास्तिक भी मृत्यु-काल में ऋषि की अपूर्व गरिमा देख आस्तिक बन गया। धन्य हैं ऋषिवर !

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi

Digitization by eGangotri Funding by Arya Samaj Foundation, Chennai

रजिस्टर्ड नं० डी० १६३१

सत्यार्थ प्रकाश के रचयिता

—नवयुग प्रवर्तक—

महर्षि दयानन्द सरस्वती

Dr. Vivek Arya Vedic Library, Delhi